

UN EVEN PAGE
NUMBERS

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180025

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^{H83.1}
P 18 D Accession No. G. H. 3054

Author पाण्डेय, राजनाथ

Title दादशी १९६०

This book should be returned on or before the date
last marked below.

द्वादशी

(१२ श्रेष्ठ कहानियाँ)



संपादक

राजनाथ पारडेय, एम० ए०,

असिस्टेंट प्रोफेसर

सागर विश्वविद्यालय

साथी प्रकाशन

सागर म० प्र०

द्वितीय संस्करण १९६०

मूल्य-२.००. (२०० नये पैसे)

मुद्रक—

सरोज प्रिन्टिंग प्रेस

सागर म० प्र०

प्रकाशक—

साथी प्रकाशन

सागर म० प्र०

प्रमुख विक्रेता—

साथी बुक डिपो

विक्रय केन्द्र

सागर म० प्र० * नई सजधज सतरंगे आकर्षक एवं अनन्य
पठनीय प्रकाशनों की सूचना से आप अवगत
होना चाहते हैं तो कृपया अपना पूरा पता
हमें लिख भेजें इस सम्बंध में हम आपको
नियमित सूचना देते रहेंगे ।

विषय-सूची

आमुख

	कहानी	कहानीकार	पृष्ठांक
१.	ममता	जयशंकर प्रसाद	... १
२.	शंखनाद	प्रेमचन्द	... ८
३.	सम्राट का स्वत्व	रायकृष्ण दास	... १६
४.	विद्रोही	विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक	... २८
५.	निर्मम	जैनेन्द्रकुमार जैन	... ३५
६.	उसके बाद	उषादेवी मित्र	... ५३
७.	गोरा	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	... ६६
८.	शालिग्राम	राजनाथ पाण्डेय	... ८०
९.	मशीन का खेल	अमृतराय	... ९५
१०.	भोलाराम का जीव	हरिशंकर परसाई	... १०३
११.	सवा रुपये	अमरकान्त	... ११२
१२.	जीत की हार	शैवाल सत्यार्थी	... १२५

कृतज्ञता प्रकाशन



प्रस्तुत संग्रह से जिन कहानियों का समावेश
किया गया है उनके यशस्वी निर्माताओं
एवं प्रकाशकों में से प्रत्येक का
मैं आभारी हूँ ।

प्रकाशक

भूमिका

कहानी का इतिहास मानव मष्टि के इतिहास जैसा ही पुरातन है । इसमें सन्देह नहीं कि मानव ने जिस समय भाषा द्वारा अपने भाव व्यक्त करना सीखा होगा, कोई न कोई कहानी का उद्गम कहानी ही उसकी प्रथम अभिव्यंजना का आधार रही होगी; चाहे वह काव्य-भाषा में व्यक्त हुई हो अथवा प्रतीकात्मक कथा में । उसने जो कुछ स्मरणीय, मनोरंजक और महत्वपूर्ण कल देखा होगा उसे मदा ही स्मरण रखना चाहा होगा । उसने जो देख लिया होगा वह तो बीता; पर उसके प्रति उसकी ममता, उसके मन की वासना के अनुरूप उससे उस बीत गए के रूप का कथन कराती रही होगी । यही कथा का आधार बना होगा ।

भारतवर्ष में कहानी साहित्य का इतिहास सबसे अधिक प्राचीन है । आख्यान, उपाख्यान, जातक, 'उपदेश' आदि अनेक रूपों

में इस साहित्य का विकास होता आया है ।

विश्व साहित्य में विश्व के समस्त साहित्यों में सबसे अधिक कहानी की प्राचीनता प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में यम-यमी, सरमा परिण के सम्वाद उपाख्यानों के मूल तत्वों से समन्वित है । पुराण, रामायण, महाभारत, उपाख्यानों से परिपूर्ण है । जातक-कथाओं में कहानी कला अपने उत्कर्ष को पहुँच गई है । कालान्तर में इन जातक कथाओं के आधार पर 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'वृहत्कथा' आदि कथा-ग्रन्थों का जन्म हुआ । 'हितोपदेश', की कहानियाँ पशु-पक्षियों को आधार बनाकर मानव-जीवन व्यापार के लिए हितकर अमूल्य उपदेशों का विधान करती हैं । कहा जाता है

कि यूनान के “ईसप के फेब्रुस” इन्ही कहानियों के छायानुवाद है। वस्तुतः “ईसप” शब्द ही “उपदेश” (= उवेस) शब्द का यूनानी अपभ्रंश जान पड़ता है। इसके उपरान्त वाराण की कादम्बरी तथा दंडी के “दश कुमार चरित” से कथा साहित्य की परम्परा शाश्वत बनी रही।

प्राचीन काल में कथा, सम्वाद, उपाख्यान, आख्यान, जातक आदि कथा-साहित्य के अनेक नाम इसके गौरव और लोक-प्रियता के प्रमाण हैं। वर्तमान काल में समस्त विश्व कहानी का महत्त्व में साहित्य के विभिन्न अंगों—नाटक, उपन्यास, निबन्ध आदि में कथा-साहित्य का ही बोल-बाला है। दो-चार पृष्ठों में लिखी कितनी ही कहानियाँ; हजार पृष्ठों में लिखे कितने ही उपन्यासों से अधिक गौरव प्राप्त कर चुकी हैं। वास्तव में मानव ज्ञान को सम्यक तथा संप्राण करने का एक मात्र साधन कहानी ही है। बिना कहानी का आकार पाये ऊँचे चिन्तन और गूढ़ तत्व-विवेचन छिन्न-भिन्न थे। मानव सम्यता के साहित्य का आदि प्राण कथा ही है और यही एक मात्र साधन है इतिहास की प्रतिष्ठा का। काव्य और कला के प्रथम अंकुर इन प्रारंभिक कहानियों से ही प्रस्फुटित हुए हैं।

पुरानी कहानियों में घटना की विचित्रता ही प्रधान बात थी। किन्तु आधुनिक कहानी ने अपना एक अलग और विशिष्ट रूप धारण कर लिया है। इस समय कहानी में घटना और कथानक का विशेष महत्त्व न होकर मानसिक द्वन्द्व ही प्रधान तत्व है। आज कहानियों में अस्वाभाविक बातों को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। भाषा को चटपटी बनाकर, उपदेशों का विधान करके अथवा अलौकिक मनोरंजन जुटाकर ही हम आज की कहानी का निर्माण नहीं कर सकते। आज की कहानी यथार्थवाद

[ग]

के तराजू पर अपने को पूर्ण संतुलन के साथ तौलती हुई, मनोविज्ञान की लकड़ी के इशारे बेखटके पाठकों के मानस में विहरण करती है। आज की कहानी का बड़ा नपा-तुला आकार है। इसमें जीवन की अनेक घटनाओं का संकलन न होकर केवल एक घटना को ही आधार बनाया जाता है। पर यह कहना भी सर्वथा सटीक नहीं है क्योंकि हम पहले ही कह चुके हैं कि आधुनिक कहानी में घटना प्रमुख गौरव की बात नहीं बनाई जाती। सच तो यह है कि हमारे जीवन में प्रतिपल चारों ओर से चमकने वाली नानाविध परिस्थितियों में से किसी एक परिस्थिति की जिस चमक की छात मानस पटल पर पड़ती है उस चमक को ग्रीत प्रभाव के अनुरूप लेखनी की नोंक से उतार देना ही आधुनिक कहानी है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस मुख्य घटना के आवरण में परिस्थिति की उस एक चमक ने कहानीकार को चमत्कृत किया उस घटना का सहारा उसे लेना ही पड़ता है। किन्तु प्रमुखता घटना को न मिलकर उस घटना के माध्यम से उठने वाले मानसिक आन्दोलन को ही मिलती है। यही आधुनिक कहानी की मुख्य विशेषता है। यही उसकी परिभाषा है। कहानीकार का यह मानसिक आन्दोलन किसी वर्तमान घटना के आग्रह से तो आरम्भ हो ही सकता है, अतीत या अदृष्ट की किसी घटना का कल्पना में साक्षात्कार करके भी उसका यह मानसिक आन्दोलन उठ खड़ा होता है और घटना की एक झलकी सी रेखा में ही वह अपने तत्सम्बन्धी समस्त राग-विराग तथा अनुस्मृतिअनुताप को संजो देता है। अतः आधुनिक कहानी की आत्मा बाह्य परिस्थिति न होकर कहानीकार का अन्तर्जगत ही होता है। उदाहरण के लिए एक घटना ले रहा हूँ। कल्पना कीजिए कि एक रेलगाड़ी जा रही है। मानो एक छोटी सी नगरी रेल की पटरी पर ठुलकती चली जा रही है। और फिर सोचिए कि उस गाड़ी का एक एक डिब्बा

एक एक छोटा मुहल्ला है और हर एक डिब्बे में रास्ता है, जिसमें हर एक मुहल्ला दूसरे मुहल्ले से सटा हुआ है। समझिये कि आप भी उसी "मुहल्ले" के एक निवासी हैं और उस एक डिब्बे में आसपास बैठे हुए आठ दस व्यक्ति बातचीत में ऐसे मग्न हैं कि उन्हें यह स्मरण ही नहीं कि गाड़ी का सफर है और वे मुसाफिर हैं। भूत-प्रेत पर बात चीत होने-होने विवाद यह छिड़ जाता है कि भूत होता है या नहीं? जिस समय यह बात जोर पकड़ने लगती है कि भूत होते ही नहीं उसी समय पास वाले डिब्बे का एक व्यक्ति उस डिब्बे में आकर खड़ा होता है और कहता है कि "कौन कहता है कि भूत नहीं होते? भूत होते हैं! और अवश्य होते हैं!" फिर लोग उससे भूत के अस्तित्व का संतोष जनक प्रमाण माँगते हैं। वह बोलता नहीं, तब तक दूसरे लोग जिनका पक्ष कमजोर पड़ रहा था एक साथ ही भूत के अस्तित्व पर भरण करने लगते हैं? इसी-बीच वह व्यक्ति धीरे-धीरे अपने डिब्बे में वापस लौट जाता है। बात यहीं खतम समझिये। एक दिन में रेलगाड़ी की यात्रा के कुछ घंटों की यह घटनवली है। आप अगर सबेरे ही गाड़ी पकड़ने के लिये उठें होंगे तो घर से निकलने के पूर्व चाय-पानी करने, रिक्शा या तांगे वाले से सुलभने, टिकट लेने, कुली से निपटने से लेकर रेलगाड़ी के डिब्बे में स्थान पाने और यात्रा करने तथा यात्रा के अन्त में गाड़ी से उतर, टिकट दे, सवारी ले अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने तक आपने अनेकानेक परिस्थितियों का निर्माण पाया होगा। रेलगाड़ी के डिब्बे में भूत पर छिड़ी बहस में अचानक भाग लेने वाले दूसरे डिब्बे के उस आदमी के आने और वापस लौट जाने को भी आपने देखा ही होगा। पर आपका देवना कुछ और, और कहानीकार का देखना कुछ और ही है। भूत का प्रमाण देने के लिए कहे जाने पर उस व्यक्ति का चुपचाप लौट जाना कहानीकार के मन पर कुछ विशेष प्रभाव डालता

[च]

है । वह उन छोटे-छोटे घटना-सूत्रों को जोड़कर यह नतीजा निकालता है कि लोग भले ही समझें कि भूत होते हैं पर भूत के अस्तित्व का प्रमाण जब ढूँढ़ो तो भूत अस्तित्व विहीन पाया जाता है । उसके मन पर इस घटना से पड़ी छाप एक सुन्दर सुडौल कहानी का निर्माण करा लेती है । बस इसी प्रकार आपके दीर्घ जीवन के अनेक वर्षों के केवल कुछ पलों की एक साधारण सी घटना कहानीकार के मन पर एक हल्की सी छाप डालकर उससे एक सुन्दर कहानी का सृजन करा सकती है । आप भी अपने एक दिन के जीवन की साधारण-साधारण घटनाओं के आधार पर अनेक कहानियों का निर्माण कर सकते हैं । यदि आप वैसा ध्यान दे सकें तो ।

हिन्दी में आधुनिक कहानियों का आगमन बंगला के प्रभाव से हुआ । बंगला में भी आधुनिक कहानियों का विकास अंगरेजी साहित्य के प्रभाव से हुआ । वस्तुतः सारे विश्व में और हिन्दी में कहानी विशेषतः अमरीका में ऐसी आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिनके परिणाम स्वरूप आधुनिक कहानी ने आज का अपना एक अलग स्वरूप धारण किया । ऐसे तो हिन्दी में पुराने ढंग की कहानियाँ लिखी ही जाती थीं और पुराने ढंग की कहानियाँ मौखिक रूप में कही-सुनी जाकर अपने अस्तित्व की अब भी रक्षा किये हुए हैं । महात्मा गोकुल दास की “चौरासी वैष्णवन की वार्ता”, जटमल लिखित “गोरा बादल की कथा” इंशा अल्लाखाँ की लिखी “रानी केतकी की कहानी” पुराने ढंग की हिन्दी की कहानियों के उदाहरण हैं ।

भारतवर्ष में अंगरेजों के आगमन से यहाँ कई नई चीजें आईं । सबसे पहले ईसाई धर्म आया, रेल और तार आये, छापे की मशीनें आईं, समाचार-पत्र आये, कल-कारखाने आये जिससे

गाँव की श्री नगरों की ओर मुड़ने लगी। पर साथ साथ वरन् सब के पहिले गुलामी भी आई। इस प्रकार एक नवीन नगरिकता का जन्म हुआ और नगर में पढ़ने-लिखने वालों की संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि में समचार पत्रों की संख्या बढ़ती गई। पत्रों के वार्षिक विशेषांक भी निकलने लगे और उन्हें मनोरञ्जक बनाने के लिए कहानियों को गौरवपूर्ण स्थान दिया जाने लगा। सदाचरण के उद्देश्य में लिखी जाने वाली इंग्लैंड की कथाओं (Morality tales) की प्रतिक्रिया अमेरिका में हो चुकी थी और आधुनिक कहानी का आरम्भ वहाँ "रोमांस" के ही रूप में हुआ। जिस समय बंगला के प्रभाव में हिन्दी में आधुनिक कहानी का पदार्पण हुआ, बंगला में कहानी साहित्य अनेक धाराओं में बढ़ रहा था। परन्तु हिन्दी-भाषा-भाषी प्रवृत्तों ने अभी अंगरेजियत का अपेक्षाकृत कम प्रभाव पड़ पाया था। इसमें हिन्दी-कहानी के पथम उत्थान काल में कहानी लेखकों की दृष्टि स्त्री-शिक्षा, अछूतों-द्वारा, विधवा-विवाह आदि सैद्धान्तिक विषयों की ही ओर रही। इंडियन प्रेस से प्रकाशित होने वाली "सरस्वती" तथा श्री जयशंकर प्रसाद जी के मासिक पत्र "इन्दु" द्वारा हिन्दी कहानी-साहित्य को वास्तविक प्रेरणा और प्रचार प्राप्त हुआ। सन् १९०० ई० के आस पास श्री किशोरीलाल जी गोस्वामी की कहानी "इन्दुमती" सरस्वती में प्रकाशित हुई। कुछ लोग इसे ही हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी मानते हैं। कुछ लोग पंडित माधव प्रसाद मिश्र को हिन्दी का प्रथम कहानीकार कहते हैं और कुछ लोग "बग-महिला" के नाम से "सरस्वती" में कहानियाँ प्रकाशित करने वाली बंगाली विदुषी बाबू पूर्णचन्द्र की धर्मपत्नी की "दुलाई वाली" कहानी को ही हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी मानते हैं। किन्तु इसके बाद कहानी साहित्य को सच्ची प्रेरणा स्वर्गीय प्रसाद से प्राप्त हुई और कहानी साहित्य का स्रोत उमड़ चला। प्रसाद के बाद क्रमशः सर्वश्री विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक"

राजा राधिकारमणसिंह, ज्वालादत्त शर्मा, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचन्द, चन्डी प्रसाद 'हृदयेग', वेचन शर्मा 'उग्र', सुदर्शन, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, पद्मलाल पुत्रालाल बख्शी, विनोदशंकर व्यास, रायकृष्ण दास, वाचस्पति पाठक, जैनेन्द्र कुमार जैन, सुभद्राकुमारी चौहान, सद्गुरुशरण अवस्थी, उषादेवी मित्रा, कमलादेवी चौधरी, मत्स्यवती मल्लिक, मोहनलाल महतो आदि कहानी लेखकों ने हिन्दी के कहानी-साहित्य को भरपूर करने का सफल उद्योग किया । नये-ताने कहानी लेखकों में सर्वश्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, बलराज साहनी, हरदयाल मौजी, रामवृक्ष शर्मा, 'बिनीपुरी', रामप्रसाद 'पहाड़ी' उपेन्द्रनाथ 'अक्षक', अखतर हुसैन 'रायपुरी', रामानुजलाल श्रीवास्तव, कमलाकान्त वर्मा, नभंदा प्रसाद खरे, राजेश्वर प्रसाद सिंह, राधाकृष्ण, कमला त्रिवेणीशंकर, रांगेय राघव, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, विष्णु प्रभाकर, हरिशंकर परसाई, अमृतराय, भैरवप्रसाद शुक्ल, मार्कंडेय, मोहन राकेश, अमरकान्त, शिवप्रसाद सिंह, औंकारनाथ श्रीवास्तव, मनमोहन मदारिया, जयसिंह, प्रमोद वर्मा, शानी, रमेश बख्शी, निर्मल वर्मा शेपर जोशी, राजेन्द्र यादव, ओमप्रकाश श्रीवास्तव मन्तू भंडारी, कृष्णा सोवती, हर्षनाथ, उमाशंकर शुक्ल, तथा अन्य अनेक उदीयमान कहानी लेखक हिन्दी कहानी-साहित्य के भांडार को निरन्तर भरते जा रहे हैं ।

यों तो कहानी और उपन्यास दोनों ही में मानव जीवन की भांकी होती है, उपन्यास में मानव जीवन के समस्त अंगों का विपद निरूपण होता है, किन्तु कहानी कहानी और उपन्यास में जीवन की किसी एक परिस्थिति और उस-विशेष का विरूपण रहता है । कहानी में अन्तर आत्मा की एक भांकी, हृदय की एक हिलोर का सजीव चित्रण है । अतः यह समझना कि कहानी उपन्यास का एक छोटा रूप है, ठीक नहीं है । इसमें सन्देह नहीं कि कहानी और उपन्यास में आकार का भी भेद होता है । एङ्गर एलेन

पो के अनुसार कहानी वह है जो केवल एक बैठक में पढ़कर समाप्त की जा सके । निस्सन्देह जब उपन्यासकार यह जानने के लिए व्यग्र रहता है कि उसे अपनी कृति में किन-किन वर्णनों और परिस्थितियों का समावेश करना चाहिए तब सफल कहानीकार यह निश्चित करने में तत्परता दिखाता है कि उसे किन प्रसंगों, किन उद्गारों और वर्णनों को कहानी में स्थान नहीं देना चाहिए । परन्तु यह निश्चित है कि कहानी और उपन्यास में आकार के भेद से अधिक महत्वपूर्ण भेद एकतथ्यता का है । जीवन के पूर्ण रूप को चित्रित करने के लिये अथवा जीवन को पूर्णता प्रदान करने के लिए उपन्यासकार छोटी-छोटी अनेक घटनाओं और वार्ताओं का समावेश करता है । किन्तु कहानीकार प्रायः इन्हें छोड़ देता है और यदि एक से अधिक तथ्यों का वह समावेश भी करता है तो वे सब सेवक की भाँति एक प्रमुख तथ्य की सेवा के ही लिए प्रयुक्त होते हैं । उपन्यास में लेखक को घटनाओं तथा पात्रों की कार्यावली की अपनी ओर से व्याख्या करने की स्वाधीनता रहती है । उपन्यासकार उपन्यास की परिस्थितियों और चरित्रों को प्रयोजनानुसार बदलता जाता है क्योंकि उसके सामने आदि से अन्त तक का एक निर्दिष्ट, पूर्व-चित्र नहीं रहता, किन्तु कहानी में ऐसा नहीं हो सकता । उसमें परिस्थिति, चरित्र और गति का क्रमिक विकास धीरे-धीरे नहीं होता । उसमें समग्र कथा, उसका समस्त कार्यक्रम लिपिबद्ध होने के पहले ही रचयिता के मानस पटल पर अंकित हो जाता है ।

कथा, कहानी, छोटी कहानी, लघु कथा, आख्यायिका, गल्प, तथा किसी कहानीकार द्वारा दिया हुआ नाम 'नवन्यास' आधुनिक कहानी के विभिन्न नाम हैं । आधुनिक कहानियाँ मुख्यतः कथा प्रधान, वातावरण प्रधान अथवा प्रभाव प्रधान होती हैं । प्रायः सभी रसों का आधुनिक कहानी में समावेश है । पशु-

आधुनिक कहानियों का विषय

पक्षी, वृक्ष, नद-नदी, पर्वत और सुदूर आकाश से लेकर नीचे समुद्र के गर्भ तक सब कुछ आधुनिक कहानियों का विषय बन गया है। धार्मिक, सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक, जासूसी, राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, प्राकृतिक, साहसिक आदि सभी कहानी के विषय हैं।

आधुनिक कहानियों के लिखने की भी कुछ प्रमुख प्रणालियाँ हैं जिनमें कथोपकथन, शैली, आत्मचरित शैली, ऐतिहासिक शैली; पत्रात्मक शैली, संस्मरण या डायरी शैली, अन्योक्ति शैली, और स्वप्न-मूलक शैली हैं।

कथानक, वातावरण, चरित्र, कथोपकथन, शैली और उद्देश्य कहानी के प्रमुख तत्व हैं।

वस्तुतः कहानी कहानीकार के व्यक्तित्व की ही परिछाई होती है। प्रत्येक कहानी लेखक का कहानी के विषयों का चुनाव और कहानी लेखन की शैली अपनी निजी होती है। केवल उसकी कला के विवेचन द्वारा ही कोई कहानी लिखना सीख नहीं सकता।

कहानीमें वर्णित घटनाओं को कथानक कहते हैं। कहानी में कथानक का वही स्थान है जो शरीर में हड्डियों का।

कथानक कथानक ऐसी घटना या घटनाओं का संग्रह होता है जो लेखक का निश्चित मन्तव्य व्यक्त करने की क्षमता रखता है !

वस्तुतः हम सब के दैनिक जीवन में घटने वाली अनेक घटनाएँ जो हमारे लिये साधारण और नगण्य होती हैं, अन्तर्दृष्टि रखने वाले कहानी लेखक की निगाह में महत्वपूर्ण होती हैं और वह उन्हीं को अपनी आँखों से एक नये भव्य रूप में देखकर उनसे महान् कहानियों का निर्माण कर देता है। अतः कथानक में अन्वेषण की नहीं सङ्गठन की ही अपेक्षा होती है।

कथानक में प्रारम्भ या प्रस्तावना मूलक मुख्यांश या “क्लाइमेक्स” तथा अन्त ये तीन भाग होते हैं । आधुनिक कहानियों का अन्त प्रायः “क्लाइमेक्स” पर ही हो जाता है ?

प्रस्तावना भाग काफी संक्षिप्त होना चाहिये । साधारणतया प्रस्तावना भाग में कहानी की प्रधान घटना का कुछ आभास दिया जाना चाहिये । कहानी के मुख्य पात्रों तथा उनकी परिस्थिति का भी कुछ परिचय दे दिया जाना चाहिये ।

“क्लाइमेक्स” तक पहुँचते-पहुँचते कहानी की एक निश्चित गति बन जानी चाहिये । “क्लाइमेक्स” को कहानी का सर्वोच्चशिखर समझिये और घटनाओं को उम शिखर तक पहुँचने की सीढ़ियाँ । कहानी में कोई घटना अपना स्वतंत्र गौरव नहीं रखती । उसकी सार्थकता वहीं तक है जहाँ तक वह कहानी की पूर्णता तक पहुँचने में सहायक होती है । कहानी कला की दृष्टि से उसके बाद उसका कोई महत्व नहीं रह जाता । यह बात स्मरणीय है कि लेखक का मन्तव्य कहानी में पात्रों के वाद-विवाद द्वारा नहीं पात्रों के कार्यों द्वारा प्रत्यक्ष किया जाना चाहिये ।

जिस प्रकार कहानी का आरम्भ महत्वपूर्ण होता है उसी प्रकार उसका अन्त भी । कहानी के अन्त से ही कहानीकार की कुशलता और सफलता का प्रमाण मिलता है । सच तो यह है कि आरम्भ की अपेक्षा कहानी के अन्त का निर्माण सरल होता है, क्योंकि कहानी का आरम्भ करते समय तो कहानी लेखक अज्ञात प्रदेश में रहता है लेकिन अन्त तक पहुँचते-पहुँचते कहानी वातावरण, प्रभाव तथा चरित्रों का विकास एक निश्चित दिशा में अंकित हो गया रहता है ।

कहानी के कथानक से ही कहानी के शीर्षक का भी सम्बन्ध माना जाना चाहिये । शीर्षक पर दृष्टि पड़ते ही कभी तो पाठक कहानी

पढ़ने के लिए उत्सुक होता है और कभी नहीं पढ़ना चाहता । जैसे किसी कहानी का शीर्षक हो “विधवा” या “अभागिन” तो कितने ही पाठक जिन्हें विधवा या अभागिनी की दुर्दशा जानना रुचिकर नहीं, कहानी को पढ़ेंगे ही नहीं । जैसे किसी अच्छी दूकान में खिड़कियों को सजाया जाता है, वैसे ही कहानी में शीर्षक को आकर्षक बनाया जाता है ।

जहाँ घटनायें घटती हैं उस स्थान तथा समय को वातावरण या देश काल कहते हैं । कहानी को स्वाभाविक बनाने के लिये लेखक को देश काल का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये । अपनी कहानी में इतिहास या वातावरण का मय्यक ज्ञान न होने से तर्किक भी विपरीत बात लिख देने से लेखक उपहासास्पद बन जाता है ।

कथा वस्तु को निर्दिष्ट स्थान तक ले जाने में प्रयत्नशील रहने वाले व्यक्ति पात्र या चरित्र कहलाते हैं । बिना पात्र के

पात्र

कथानक का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता ।

अतः प्रत्येक अच्छी कहानी में पात्र और कथानक का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होना चाहिये । प्रत्येक

घटना ऐसी हो जो पात्र के स्वभाव के अनुरूप हों । ऐसे ही, पात्र भी ऐसे हों जो एक परिस्थिति में एक विशेष कार्य करें । इसके लिये कहानी लेखक को मानव-स्वभाव का गहन अध्ययन होना चाहिये । उसे यह देखना चाहिये कि एक ही श्रेणी के कई मनुष्यों की मनोवृत्तियों में कौन-कौन से बारीक अन्तर हैं । इन बारीकियों के समझने और सुलझाने से ही कहानी के अद्भुत चरित्रों की सृष्टि होती है । मनुष्य समाज में रहने वाला प्राणी है, इसलिये समाज से बिलग करके उसकी ठीक व्याख्या नहीं हो सकती । उसके चरित्र को भली भाँति समझने के लिये उसके जातीय, वंशगत, और पैतृक इतिहास का परिचय दिया जाना चाहिये; क्योंकि इन्हीं चहार-दीवारियों

के भीतर व्यक्तित्व का निर्माण होता है । इसके अतिरिक्त उसकी व्यक्तिगत योग्यता का भी विचार होना चाहिये । सजीव चरित्र प्रस्तुत करने के लिये पात्र की आयु, रंग, रूप, मुखाकृति, उसकी कल्पना उसकी दिनचर्या, उसकी जीवन-घटनाओं आदि का भी उल्लेख होना चाहिये । पात्रों के चरित्र-चित्रण में कहानीकार को बहुत सतर्कता की आवश्यकता होती है । जिस प्रकार चित्र बनाते समय एक छोटी सी गलत रेखा भी चित्र को सर्वथा बिगाड़ दे सकती है उसी प्रकार चरित्र के चित्रण में भी होता है । आधुनिक कहानियों में वर्णन द्वारा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख करना पसन्द नहीं किया जाता ।

कथोपकथन, सम्वाद या वार्तालाप कहानी में अनिवार्य है क्योंकि अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने का मनुष्य के

पास यही एक मुख्य साधन है । कथोपकथन स्वाभाविक, सरल और प्रभावोत्पादक होना चाहिये । इसमें एक शब्द भी निरर्थक न होना चाहिए ।

प्रायः कहानी से उस समय जी ऊब जाता है जब पात्र ग्रामोफोन की तरह बोलने लगते हैं । मनोभावों के अनुरूप ही कथोपकथन का निर्माण होना चाहिए । पात्रों की रहन सहन, उनकी शिक्षा-दीक्षा, वयस आदि का उनके वार्तालाप पर प्रभाव पड़ता है । जो क्लक होगा वह प्रायः अपने साहब और दफ्तर की बातें किया करेगा । बहुधा परिचितों को देखने से पहिले ही उनकी आवाज सुनकर उन्हें पहिचान लिया जाता है । कहानियों के पात्रों के वार्तालाप में भी जब यह विशेषता आ जाये कि उसे ही सुनकर उन्हें पहिचान लिया जाय तभी समझिये कि कथोपकथन सफल हो गया ।

लेखक अपने मनोभावों को अपने जिस झूठे ढंग से प्रकट करता है, उसी को शैली कहते हैं । प्रत्येक सफल लेखक की अपनी निजी शैली होती है, जिसका निर्माण उसकी योग्यता और प्रवृत्ति

के अनुरूप हुआ करता है ।

संसार में मनुष्यों की ही भाँति शब्द कोष में शब्दों का भी अलग-अलग व्यक्तित्व होता है । भाषा और शैली का एक मात्र उद्देश्य यही है कि गूढ़ से गूढ़ भावनाएँ लेखक द्वारा खूब स्पष्ट होकर रोचकता के साथ व्यक्त हो जायें । उचित शब्दों की स्थापना से ही इस उद्देश्य की सिद्धि होती है । कहानो लेखक को कोई बात समेटे में (In general terms) या मोटे तौर पर नहीं कहनी चाहिये । जहाँ तक हो सके उसे नाम देकर, स्पष्ट बातें कहनी चाहिये । किसी पात्र की मनोवैज्ञानिक विवेचना न करके साफ-साफ यह कहना चाहिये कि अमुक अवसर पर उसके मन में यह बात उठ रही है ।

गद्य की भाषा को बहुत अधिक अलंकृत और चमत्कृत करना भी ठीक नहीं है । स्पष्टता और सीधेपन में जो जोर होता है वह सजाव-शृंगार तथा भुमाव में नहीं होता । यह सदैव स्मरण रहना चाहिये कि लेखक का काम कहानी द्वारा पाठकों को जागृत करना होता है न कि उनमें चकाचौंध उत्पन्न करना । अतएव प्रत्येक शब्द के प्रति कहानीकार को श्रद्धा होनी चाहिये ।

कहानीकार का उद्देश्य स्वान्तः मुखाय न होकर विश्वकल्याण होता है । उच्चकोटि का उद्देश्य वही है जो अधिक से अधिक

जनों के हृदय को छू सके । कहानी समाप्त होने पर पाठक की जिज्ञासा शान्त हो सके और उसमें कहानी के आगे भी पहुंचने की

लालसा जाग्रत हो सके, यही प्रत्येक सफल कहानीकार का उद्देश्य होता है और यही कहानी की सार्थकता होती है ।

यह संग्रह तैयार करने में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कहानी लेखकों की कृतियाँ सम्मिलित करने के साथ ही साथ हमारा यह भी ध्यान रहा है कि

किशोरावस्था के विद्यार्थियों के लिये किस प्रकार की कहानियाँ अधिक उपयुक्त होंगी । इसलिये हमने कहानी की उपयुक्तता पर मुख्य और उसके लेखक पर गौरव रूप से ध्यान दिया है । यहाँ 'मशीन का खेल', 'भोलाराम का जीव' 'सवारूपये' तथा 'जीत की द्वार' जैसी नई कहानियों का भी समावेश किया गया है । आदि में अंत तक इस संग्रह की समस्त कहानियाँ किशोरवय के छात्रों के उपयुक्त हैं । किशोरों और किशोरियों की सम्मिलित कक्षा में ये सभी कहानियाँ बिना किसी भिन्नक के पढ़ाई जा सकती हैं । यह इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता है ।

१०—३—१६६०

राजनाथ पांडेय

ममता

[जयशंकर प्रसाद]

(१)

रोहतास दुर्ग के एक प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण प्रवाह को देख रही है। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण नदी के समान ही उमड़ रहा था। मन में वेदना, मस्तक में आँधी, आँखों में पानी की बरसात लिये, वह सुख के कंटक-शयन में विकल थी। वह रोहतास दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिये कुछ अभाव होना असंभव था, परन्तु वह विधवा थी। हिन्दू विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय प्राणी है—तब उसकी बिडम्बना का कहाँ अन्त था !

चूड़ामणि ने चुपचाप उसके प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में, उसके कलनाद में अपना जीवन मिलाने में वह बेसुध थी। पिता का आना न जान सकी। चूड़ामणि व्यथित हो उठे। स्नेह-पालिता पुत्री के लिये क्या करे, यह स्थिर न कर सकते थे। लौटकर बाहर चले गये। ऐसा प्रायः होता, पर आज मंत्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी, पैर सीधे न पड़ते थे।

एक पहर बीत जाने पर वे फिर ममता के पास आये। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों में कुछ लिये हुए खड़े थे। कितने ही मनुष्यों के पद-शब्द सुन

ममता ने घूम कर देखा। मंत्री ने सब थालों को रखने का संकेत किया। अनुचर थाल रखकर चले गये।

ममता ने पूछा—“यह क्या है पिता जी?” तेरे लिये बेटी उपहार है,” कहकर चूड़ामणि ने उसका आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहरी सन्ध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी।

“इतना स्वर्ण ! यह कहां से आया ?”

“चुप रहो, ममता यह तुम्हारे लिये है।”

“तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया। पिता जी यह अनर्थ है, अर्थ नहीं लौटा दीजिये। पिता जी हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे ?”

“इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्तवंश का अन्त समीप है। बेटी, किसी भी दिन शेरशाह रोहिताश्व पर अधिकार कर सकता है; उस दिन मंत्रित्व न रहेगा, तब के लिये बेटी।”

“हे भगवान् ! तब के लिये ! विपद के लिये इतना आयोजन ! परमपिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस ! पिताजी क्या भीख नहीं मिलेगी ? क्या कोई हिन्दू भू-पृष्ठ पर न बचा रह जायगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके ? यह असंभव है। फेर दीजिये पिताजी, मैं कांप रही हूँ। इसकी चमक आंखों को अन्धा बना रही हैं !”

“मूर्ख है”—कहकर चूड़ामणि चले गये। दूसरे दिन जब डोलियों का ताँता भीतर आ रहा था, ब्राह्मण—मन्त्री

चूड़ामणि का हृदय धक-धक करने लगा। वह अपने को न रोक सका। उसने जाकर रोहिताश्व दुर्ग के तोरण पर डोलियों का आवरण खुलवाना चाहा। पठानों ने कहा—

“यह महिलाओं का अपमान करना है।” बात बढ़ गई। तलवारें खिंचीं। ब्राह्मण वहीं मारा गया और राजा, रानी, कोष सब छली शेरशाह के हाथ पड़े। निकल गई ममता। डोली में भरे हुए पठान सैनिक दुर्ग भर में फैल गये, पर ममता न मिली।

(२)

काशी में उत्तर धर्मचक्र विहार मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्तिका खंडहर था। भग्न—चूड़ा तृण—गुल्मों से ढके हुए प्राचीर, ईंटों के ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, प्रीष्म रजनी की चन्द्रिका में अपने को शीतल कर रही थी।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते.....पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मन्द प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बन्द करना चाहा, परन्तु उस व्यक्ति ने कहा—“माता ! मुझे आश्रय चाहिये।”

“तुम कौन हो ?” स्त्री ने पूछा।

“मैं मुगल हूँ। चौसा-युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूँ।

“क्या शेरशाह से ?” स्त्री ने होंठ काट लिये।

“हाँ माता !”

“परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो। वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर प्रतिबिम्ब तुम्हारे मुख पर भी है। सैनिक ! मेरी कुटी में स्थान नहीं, जाओ कहीं दूसरा आश्रय खोज लो।”

“गला सूख रहा है, साथी छूट गये हैं, अश्व गिर पड़ा है”— इतना कहते-कहते वह धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्मांड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा यह विपत्ति कहाँ से आई। उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी—“सब विधर्मी दया के पात्र नहीं—मेरे पिता का वध करने वाले आततायी।” घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा—“माता ! तो फिर चला जाऊँ ?”

स्त्री विचार कर रही थी—“मैं ब्राह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म—अतिथिदेव की उपासना—का पालन करना चाहिये। परन्तु यह... नहीं, नहीं, सब विधर्मी दया के पात्र नहीं। परन्तु यह दया तो नहीं, कर्तव्य करना है। तब ?”

मुगल अपनी तलवार टेक कर उठ खड़ा हुआ, ममता ने कहा—“क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो।”

“छल ! नहीं, तब नहीं, स्त्री ! जाता हूँ। तैमूर वंशधर स्त्री से छल करेगा ! जाता हूँ। भाग्य का खेल है।”

ममता ने मन में कहा—“यह कौन दुर्ग है। यही भोपड़ी न, जो चाहे ले ले। मुझे तो अपना कर्तव्य पालन करना है।” वह बाहर चली आई और मुगल से बोली—“जाओ भीतर, थके हुए भयभीत पथिक ! तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें आश्रय देती हूँ। मैं ब्राह्मण कुमारी हूँ; सब अपना धर्म छोड़ दें, तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ ?” मुगल ने चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में वह महिमामय मुख-मंडल देखा; उसने मन ही मन नमस्कार किया। ममता पास की दूटी हुई दीवारों में चली गई। भीतर थके पथिक ने भोपड़ी में विश्राम किया।

प्रभात में खंडहर की संधि से ममता ने देखा, सैकड़ों अश्वारोही उस प्रांत में घूम रहे हैं। वह अपनी मूर्खता पर अपने को कोसने लगी।

अब उस भोपड़ी से निकलकर पथिक ने कहा—“मिर्जा ! मैं यहाँ हूँ।”

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार ध्वनि से वह प्रान्त गँज उठा। ममता अधिक भयभीत हुई। पथिक ने कहा, “वह स्त्री कहाँ है ? उसे खोज निकालो।” ममता छिपने के लिये अधिक सचेष्ट हुई। वह मृग-दाव में चली गई। दिन भर उसमें से न निकली। सन्ध्या में जब उन लोगों के जाने का उपक्रम हुआ तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते हुए कह रहा है—“मिर्जा, उस स्त्री को मैं कुछ दे न सका। उसका घर बनवा देना, क्योंकि मैंने विपत्ति में यहाँ विश्राम पाया था। यह स्थान भूलना मत।” इसके बाद वे चले गये।

(३)

चौसा के मुगल-पठान युद्ध को बहुत दिन बीत गये । ममता अब सत्तर वर्ष की वृद्धा है । वह अपनी भोपड़ी में एक दिन पड़ी थी । शीतकाल का प्रभात था । उसका जीर्ण कंकाल खौंसी से गूँज रहा था । ममता की सेवा के लिये गांव की दो-तीन स्त्रियां उसे घेरकर बैठी थीं, क्योंकि वह आजीवन सब के सुख-दुःख की समभागिनी रही ।

ममता ने जल पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल दिलाया । साहसा एक अश्वारोही उस भोपड़ी के द्वार पर दिखाई पड़ा । वह अपनी धुन में कहने लगा—“मिरजा ने जो चित्र बनाकर दिया है, वह तो इसी जगह का होना चाहिये । वह बुढ़िया मर गई होगी । अब किससे पूछें कि एक दिन शहंशाह हुमायूँ किस छप्पर के नीचे बैठे थे ? यह घटना भी तो सैतालीस वर्ष से ऊपर की हुई !”

ममता ने अपने विकल कानों से सुना । उसने पास की स्त्री से कहा—“उसे बुलाओ ।”

अश्वारोही पास आया । ममता ने रुक-रुक कर कहा—“मैं नहीं जानती कि वह शहंशाह था, या साधारण मुगल, पर एक दिन वह इसी भोपड़ो के नीचे रहा । मैंने सुना था कि वह मेरा घर बनवाने की आज्ञा दे चुका था । मैं आजीवन अपनी भोपड़ी खुदवाने के डर से भीत रही थी । भगवान ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़ जाती हूँ । अब तुम इसका मकान बनवाओ या महल, मैं अपने चिर-विश्राम गृह में जाती हूँ ।”

वह अश्वारोही अवाक् खड़ा था। बुढ़िया के प्राण-पक्षी अनन्त में उड़ गये।

वहां एक अष्टकोण मन्दिर बना, और उस पर शिलालेख लगाया गया—

“सातों देश के नरेश हुमायूं ने एक दिन यहां विश्राम किया था। उनके पुत्र अकबर ने उनकी स्मृति में यह गगन चुम्बी मन्दिर बनवाया।”

पर उसमें ममता का कहीं नाम भी नहीं।



२

शंखनाद

[प्रेमचन्द]

(१)

भानु चौधरी अपने गाँव के मुखिया थे। गाँव में उनका बड़ा मान था। दारोगा जी उन्हें टाट बिना जमीन पर न बैठने देते। मुखिया साहब की ऐसी धाक बँधी हुई थी कि उनकी मर्जी बिना गाँव में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था। कोई घटना, चाहे वह सास-बहू का विवाद हो, चाहे मेंड़ या खेत का झगड़ा, चौधरी साहब के शासनाधिकार को पूर्ण रूप से सचेत करने के लिये काफी था। वह तुरन्त घटनास्थल पर जा पहुँचते, तहकीकात होने लगती, गवाह और सबूत के बिना किसी अभियोग को सफलता सहित चलाने में जिन बातों की जरूरत होती है उन सब पर विचार होता और चौधरी साहब के दरबार से फैसला हो जाता। किसी को अदालत जाने की जरूरत न पड़ती। हाँ, इस कष्ट के लिये चौधरी साहब कुछ फीस जरूर ले लेते थे। यदि किसी अवसर पर फीस मिलने में असुविधा के कारण उन्हें धीरज से काम लेना पड़ता तो गाँव में आफत मच जाती थी; क्योंकि उनके धीरज और दारोगा जी के क्रोध में कोई घनिष्ठ संबंध था। सारांश यह कि चौधरी से उनके दोस्त-दुश्मन सभी चौकन्ने रहते थे।

(२)

चौधरी महाशय के तीन सुयोग्य पुत्र थे । बड़े लड़के बितान एक सुशिक्षित मनुष्य थे । डाकिये के रजिस्टर पर दस्तखत कर लेते थे । बड़े अनुभवी, बड़े मर्मज्ञ, बड़े नीति कुशल । मिर्ज़ाई की जगह कमीज पहिनते, कभी-कभी सिगरेट भी पीते, जिससे उनका गौरव बढ़ता था । यद्यपि उनके ये दुर्ब्यसन बूढ़े चौधरी को नापसन्द थे, पर बेचारे विवश थे, क्योंकि अदालत और कानून के मामले बितान के हाथों में थे । वह कानून का पुतला था । कानून की दफायें जवान पर रखी रहती थीं । गवाह गढ़ने में वह पूरा उस्ताद था । मामले लड़के शान चौधरी कृषि-विभाग के अधिकारी थे । बुद्धि के मंद; लेकिन शरीर से बड़े परिश्रमी । जहाँ घास न जमती हो, वहाँ केसर जमा दें । तीसरे लड़के का नाम गुमान था । वह बड़ा रसिक साथ ही उद्‌ड भी था । मुहर्रम में ढोल इतने जोरों से बजाता कि कान के पर्दे फट जाते । मछली फँसाने का बड़ा शौकीन था । बड़ा रंगीला जवान था । खँजड़ी बजा बजा कर वह मीठे स्वर में ख्याल गाता तो रंग जम जाता उसे दंगल का ऐसा शौक था कि कोसों तक धावा मारता । पर घर वाले कुछ ऐसे शुष्क थे कि उसके इन व्यसनो से तनिक भी सहानुभूति न रखते थे । पिता और भाइयों ने तो उसे ऊसर खेत समझ रखा था । घुड़की - धमकी, शिक्षा और उपदेश, स्नेह और विनय किसी का उस पर कुछ भी असर न हुआ । हाँ, भावजें अभी तक उसकी ओर से निराश न हुई थीं । वे अभी तक उसे कड़वी दवाइयाँ पिलाये जा रही थीं, पर आलस्य वह राज-रोग है जिसका रोगी भी नहीं सँभलता । ऐसा कोई बिरला ही दिन जाता होगा कि

बाँके गुमान को भावजों के कटु वाक्य न सुनने पड़ते हैं। ये विषैले शर कभी-कभी उसके कठोर हृदय में भी चुभ जाते; किन्तु यह घाव रात भर से अधिक न रहता। भोर होते ही थकान के साथ ही यह पीड़ा भी शांत हो जाती। तड़का हुआ; उसने हाथ-मुंह धोया, बंशी उठाई और तालाब की ओर चल खड़ा हुआ। भावजें फूलों की वर्षा किया करतीं, बूढ़े चौधरी पैतरे बदलते रहते और भाई लोग तीखी निगाह से देखा करते; पर अपनी धुन का पूरा बाँका गुमान उन लोगों के बीच से इस तरह अकड़ना चला जाता, जैसे कोई मस्त हाथी कुत्तों के बीच से निकल जाता है। उसे सुमार्ग पर लाने के लिये क्या-क्या उपाय नहीं किये गये? बाप समझाता—बेटा, ऐसी राह चलो, जिसमें तुम्हें भी पैसे मिलें और गृहस्थी का भी निबाह हो। भाइयों के भरोसे कब तक रहोगे? मैं पका आम हूँ—आज टपक पड़ूँ या कल। फिर तुम्हारा निबाह कैसे होगा? भाई बात भी न पूछेंगे, भावजों का रंग देख ही रहे हो। तुम्हारे भी लड़के बाले हैं, उनका भार कैसे सँभालोगे? खेतों में जी न लगे, तो कहो कान्स्टेबलों में भरती करा दूँ। बाँका गुमान खड़ा खड़ा वह सब सुनता, लेकिन पत्थर का देवता था कभी न पसीजता। इन महाशय के अत्याचार का दंड उनकी स्त्री बेचारी को भोगना पड़ता था। घर में मेहनत के जितने काम होते, वे उसी के सिर थोपे जाते। उपले पाथती, कुँए से पानी लाती, आटा पीसती और इतने पर भी जेठानियाँ सीवे मुंह बात न करतीं। वाक्य-वाणों से छेदा करतीं। एक बार जब वह पति से कई दिन रूठी रही, तो बाँके गुमान कुछ नर्म हुए। बाप से जाकर बोले—मुझे कोई दुकान

खोलवा दीजिये । चौधरी ने परमात्मा को धन्यवाद दिया । फूले न समाये । कई सौ रुपये लगाकर कपड़े की दुकान खोलवा दी । गुमान के भाग जगे । तनजेब के चुन्नटदार कुरते बनवाये, मलमल का साफा धानी रंग में रंगवाया । सौदा बिके या न बिके, उसे लाभ ही होता था । दुकान खुली हुई है, दस पाँच गाढ़े मित्र जमे हुए हैं, चरस की दम और खयाल की तानें उड़ रही हैं ।—

चल भटपट री, जमुना तट री, खड़ो नटखट री !

इस तरह तीन महीने चैन से कटे । बाँके गुमान ने खूब दिल खोलकर अरमान निकाले; यहाँ तक कि सारी लागत लाभ हो गई । ठाट के टुकड़े के सिवा और कुछ न बचा । बूढ़े चौधरी कुँए में गिरने चले; भावजों ने घोर आन्दोलन मचाया—अरे राम ! हमारे बच्चे और हम चीथड़ों को तरसें, गाढ़े का एक कुरता भी नमीब न हो, और इतनी बड़ी दूकान इस निखटू की कफन बन गई । अब कौन मुँह दिखायेगा ! कौन मुँह लेकर घर में पैर रखेगा ! किन्तु बाँके गुमान के तेवर जरा भी मैले न हुए । वही मुँह लिये वह फिर घर आया और फिर वही पुरानी चाल चलने लगा । कानूनदाँ बितान उसके ये ठाट बाट देखकर जल जाता । मैं सारे दिन पसीना बहाऊँ मुझे नैन सुख का कुरता भी न मिले, यह अपाहिज सारे दिन चारपाई तोड़े और यों बन-ठन कर निकले । ऐसे वस्त्र तो शायद मुझे अपने व्याह में भी न मिले होंगे । मोठे शान के हृदय में भी कुछ ऐसे ही विचार उठते थे । अन्त में जब यह जलन न सही गई, और अग्नि भड़की; तो एक दिन कानूनदाँ बितान की पत्नी गुमान

के सारे कपड़े उठा लाई और उन पर मिट्टी का तेल उँडेलकर आग लगा दी। ज्वाला उठी। सारे कपड़े देखते देखते जल कर राख हो गये गुमान रोते थे दोनों भाई खड़े तमाशा देखते थे बूढ़े चौधरी ने यह दृश्य देखा, और सिर पीट लिया। यह द्वेषाग्नि हैं। घर को जला कर तब बुझेगी।

(३)

यह ज्वाला तो थोड़ी देर में शांत हो गई, परन्तु हृदय की आग ज्यों की त्यों दहकती रही। अंत में एक दिन बूढ़े चौधरी ने घर के सब मेम्बरों को एकत्र किया और इस गूढ़ विषय पर विचार करने लगे कि वेड़ा कैसे पार हो। बितान से बोले—बेटा, तुमने देखा कि आज बात की बात में सैकड़ों रुपयों पर पानी फिर गया। अब इस तरह निर्वाह होना असम्भव है। तुम समझदार हो मुकदमें-मामले करते हो, कोई ऐसी राह निकालो कि घर डूबने से बचे। मैं तो यह चाहता हूँ कि जब तब चोला रहे, सबको समेटे रहूँ, मगर भगवान के मन में कुछ और ही है।

बितान की नीतिकुशलता अपनी चतुर सहगामिनी के सामने लुप्त हो जाती थी। वह अभी इसका उत्तर सोच ही रहे थे कि श्रीमती जी बोल उठीं—दादा जी ! अब समझाने बुझाने से काम न चलेगा; सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया। बेटे की जितनी पीर बाप को होगी; भाइयों को उतनी क्या, उसकी आधी भी नहीं हो सकती। मैं तो साफ कहती हूँ—गुमान का तुम्हारी कमाई में हक है उन्हें कंचन के कौर खिलाओ और चांदी के हिंडोले में झुलाओ। हममें न इतना बूता है और न इतना

कलेजा । हम अपनी भोपड़ी अलग बना लेंगे । हाँ, जो कुछ हमारा हो, वह हमको मिलना चाहिये । बाँट-बखरा कर दीजिये । बला से चार आदमी हंसेगें, अब कहां तक दुनियां की लाज ढोवें ?

नीतिज्ञ बितान पर इस प्रबल वक्तृता का असर हुआ । वह उनके विकसित और प्रमदित चेहरे से झलक रहा था । उनमें स्वयं इतना साहस न था कि इस प्रस्ताव को इतनी स्पष्टता से व्यक्त कर सकते । नीतिज्ञ महाशय गंभीरता से बोले—जायदाद मुश्तरका, मनकूला या गैर-मनकूला आपके हीनहयात तकसीम की जा सकती है; इसकी नजीरें मौजूद हैं । जमींदार को साकितुल्मिलिकयत करने का कोई इस्तहकाक नहीं है ।

अब मंद-बुद्धि ज्ञान की बारी आई; पर बेचारा किसान बैलों के पीछे आँखें बन्द करके चलने वाला, ऐसे गूढ़ विषय पर कैसे मुँह खोलता । दुबिधा में पड़ा हुआ था । तब उसकी सत्य-वक्ता धर्मपत्नी ने अपनी जेठानी का अनुसरण कर कठिन कार्य सम्पन्न किया । बोली-बड़ी बहन ने जो कुछ कहा, उसके सिवा और दूसरा उपाय नहीं । कोई तो कलेजा तोड़-तोड़ कर कमाये मगर पैसे-पैसे को तरसे, तन ढाँकने को बख्तक न मिले, और कोई सुख की नींद सोवे, हाथ बढ़ा-बढ़ा के खाय ! ऐसी अंधेर नगरी में अब हमारा निबाह न होगा ।

शान चौधरी ने भी इस प्रस्ताव का मुक्तकंठ से अनुमोदन किया । अब बूढ़े चौधरी गुमान से बोले—क्यों बेटा तुम्हें भी यही मंजूर है ? अभी कुछ नहीं बिगड़ा । यह आग अब भी बुझ सकती है । काम सबको प्यारा है, चाम किसी को नहीं । बोलो क्या कहते हो ? कुछ काम धन्धा करोगे या अभी आँखें नहीं खुलीं ?

गुमान में धैर्य की कमी न थी। बातों को इस कान सुन उस कान उड़ा देना उसका नित्य-कर्म था। किन्तु भाइयों की इस जन मुरीदी (पत्नी-परायणता) पर उसे क्रोध आ गया। बोला—भाइयों की जो इच्छा है, वही मेरे मन में भी लगी हुई है। मैं भी इस जंजाल से अब भागना चाहता हूँ। मुझसे न मजबूरी हुई न होगी। जिसके भाग में चष्मकी पीसना बढ़ा हो वह पीसे ! मेरे भाग में तो चैन करना लिखा है, मैं क्यों अपना मिर ओखलो में दूँ ? मैं तो किसी से काम करने को नहीं कहता। आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हैं ! अपनी-अपनी फिक्र कीजिये, मुझे आधा सेर आटे की कमी नहीं है।

इस तरह की सभाएँ कितनी बार हो चुकी थीं, परन्तु इस देश की सामाजिक और राजनीतिक सभाओं की तरह इसमें भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था। दो तीन दिन गुमान ने घर पर खाना नहीं खाया। जतनसिंह ठाकुर शौकीन आदमी थे उन्हीं की चौपाल में पड़ा रहता। अन्त में बूढ़े चौधरी गये और मना के लाये। अब फिर वह पुरानी गाड़ी अड़ती, मचलती हिलती, चलने लगी।

(४)

चौधरी के घर के बच्चे भी बड़े सयाने थे। उनके लिये मिट्टी के घोड़े और लकड़ी की नावें कागज की नावें थी। फलों के विषय में उनका ज्ञान असीम था, गूलर और जंगली बेर के सिवा कोई ऐसा फल न था जिसे वे बोंमारियों का घर न समझते हों, लेकिन गुरदीन के खोंचे में ऐसा प्रबल आकर्षण था कि उसकी ललकार सुनते ही उनका सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता था। साधारण बच्चों की तरह यदि सोते भी हों तो चौंक पड़ते थे। गुरदीन

उस गांव में साप्ताहिक फेरे लगाता था। उसके शुभागमन की प्रतीक्षा और आकाँक्षा में कितने ही बालकों को बिना किंडरगार्टन की रंगीन गोलियों के ही, संख्यायें और दिनों के नाम याद हो गये थे। गुरदीन बूढ़ासा मैला-कुचैला आदमी था, किन्तु आस पास में उसका नाम उपद्रवो लड़कों के लिये हनुमान-मंत्र से कम न था। उसकी आवज सुनते ही उसके खोंचे पर बालकों का ऐसा धावा होता कि मक्खियों की असंख्य सेना को भी रणस्थल से भागना पड़ता था। और जहाँ बच्चों के लिये मिठाइयाँ थीं वहाँ गुरदीन के पास माताओं के लिये इससे भी ज्यादा मीठी बातें थी। माँ कितना ही मना करती रहे बार बार पैसा न रहने का बहाना करे; पर गुरदीन चट पट मिठाइयों का दोना बच्चों के हाथ में रख ही देता, और स्नेह-पूर्ण भाव से कहता—बहू जी ! पैसों की कुछ चिन्ता न करो, फिर मिल रहेंगे, कहीं भागे थोड़े जाते हैं। नारायण ने तुमको बच्चे दिये हैं तो मुझे भी इनकी न्योछावर मिल जाती है, उन्हीं की बदौलत मेरे बाल बच्चे भी जीते हैं; अभी क्या ईश्वर इनका मौर तो दिखावै, फिर देखना कैसे ठनगन करता हूँ।

गुरदीन का यह व्यवहार चाहे वाणिज्य-नियमों के प्रतिकूल ही क्यों न हो, चाहें “नौ नगद सही. तेरह उधार नहीं” वाली कहावत अनुभव-सिद्ध ही क्यों न हों; किन्तु मिष्टभाषी गुरदीन को कभी अपने इस व्यवहार पर पछताने या उसमें संशोधन करने की जरूरत नहीं हुई।

मंगल का शुभ दिन था। बच्चे बड़ी बेचैनी से अपने दरवाजों पर खड़े गुरदीन की राह देख रहे थे। कई उत्साही लड़के पेड़ों पर चढ़ गये थे, और कोई कोई अनुराग से

विवश होकर गाँव से बाहर निकल गये थे । सूर्य भगवान अपना सुनहला थाल लिये पूरब से पश्चिम जा पहुँचे थे इतने ही में गुरदीन आता हुआ दिखाई दिया । लड़कों ने दौड़कर उसका दामन पकड़ा और आपस में खींचा-तानी होने लगी । कोई कहता था मेरे घर चलो; कोई अपने घर का न्यौता देता था । सबसे पहले भानु चौधरी का मकान पड़ा । गुरदीन ने अपना खींचा उतार दिया । मिठाइयों की लूट शुरू हो गई । बालकों और स्त्रियों का उड़ लग गया । हर्ष और विषाद, संतोष और लोभ, ईर्ष्या और लोभ, द्वेष और जलन की नाट्यशाला सज गई । कानून दाँ वितान की पत्नी अपने तीनों लड़कों को लिये निकली । शान की पत्नी भी अपने दोनों लड़कों के साथ उपस्थित हुई । गुरदीन ने मीठी बातें करनी शुरू की । पैसे भोली में रखें, धेले को मिठाई दी, और धेले-धेले का आशीर्वाद । लड़के दोने लिये उछलते-कूदते घर में दाखिल हुए । अगर सारे गाँव में कोई ऐसा बालक था, जिसने गुरदीन की उदारता से लाभ न उठाया हो, तो वह बाँके गुमान का लड़का धान था !

यह कठिन था कि बालक धान अपने भाइयों-बहनों को हँस-हँसकर और उछल-उछलकर मिठाइयाँ खाते देखकर सन्न कर जाय । उस पर तुरा यह कि वे उसे मिठाइयाँ दिखा-दिखाकर ललचाते और चिढ़ाते थे । बेचारा धान चीखता और अपने माता का आँचल पकड़-पकड़कर दरवाजे की तरफ खींचता था; पर वह अबला क्या करे ? उसका हृदय बच्चे के लिये ऐंठ-ऐंठकर रह जाता था । उसके पास एक पैसा भी नहीं था । अपने दुर्भाग्य पर, जेठानियों की निष्ठुरता

पर और सबसे ज्यादा अपने पति के निखटूपन पर कुड़-कुड़कर रह जाती थी। अपना आदमी ऐसा निकम्मा न होता, तो क्यों दूसरे का मुँह देखना पड़ता, क्यों दूसरों के धक्के खाने पड़ते? उसने धान को गोद में उठा लिया और प्यार से दिलासा देने लगी—“बेटा, रोओ मत, अब की गुरदीन आवेगा, तो मैं तुम्हें बहुत सी मिठाई ले दूँगी। मैं इससे अच्छी मिठाई बाजार से मँगवा दूँगी, तुम कितनी मिठाई खाओगे?” यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं। आह! यह मनहूस मंगल आज ही फिर आवेगा, और फिर ये ही बहाने करने पड़ेंगे! हाय, अपना प्यारा बच्चा घेले की मिठाई को तरसे और घर में किसी का पत्थर सा कलेजा न पसीजे! वह बेचारी तो इन चिंताओं में डूबी हुई थी और धान किसी तरह चुप हो न होता था। जब कुछ बस न चला तो माँ की गोद से जमीन पर उतर कर लोटने लगा और रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा ली। माँ ने बहुत बहलाया, फुसलाया; यहाँ तक कि उसे बच्चे की इस हठ पर क्रोध भी आ गया। मानव-हृदय के रहस्य कभी समझ में नहीं आते। कहाँ तो बच्चे को प्यार से चिपटाती थी, कहाँ ऐसी भल्लवाई कि उसे दो-तीन थप्पड़ जोर से लगाये और घुड़ककर बोली—“चुप रह अभागो! तेरा ही मुँह मिठाई खाने का है? अपने दिन को नहीं रोता, मिठाई खाने चला है?”

बाँका गुमान अपनी कोठरी के द्वार पर बैठा हुआ यह कौतुक वड़े ध्यान से देख रहा था। वह इस बच्चे को बहुत चाहता था। इस वक्त के थप्पड़ उसके हृदय में तेज भाले

के समान लगे और चुभ गये। शायद उनका अभिप्राय भी यही था। धुनियाँ रुई को धुनकने के लिये ताँत पर चोट लगाता है।

जिस तरह पत्थर और पानी में आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्य के हृदय में भी — चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यों न हो — उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं। गुमान की आँखें भर आईं। आँसू की बूँदें बहुधा हमारे हृदय की मलिनता को उज्ज्वल कर देती हैं। गुमान सचेत हो गया ! उसने जाकर बच्चे को गोद में उठा लिया, और अपनी पत्नी से करुणोत्पादक स्वर में बोला— “बच्चे पर इतना क्रोध क्यों करती हो ? तुम्हारा दोषी मैं हूँ, मुझ को जो दंड चाहो दो। परमात्मा ने चाहा तो कल से लोग इस घर में मेरा और मेरे बाल-बच्चों का भी आदर करेंगे। तुमने आज मुझे सदा के लिये इस तरह जगा दिया, मानों मेरे कानों में शंखनाद कर मुझे कर्म-पथ में प्रवेश करने का उपदेश दिया हो।”



सम्राट का स्वत्व

[राय कृष्णदास]

“एक वह और एक मैं ! किन्तु मेरा कुछ भी नहीं ! इस जीवन में कोई पद नहीं ! वह समस्त साम्राज्य पर निष्कण्टक राज्य करे और मुझे एक-एक कौड़ी के लिये उसका मुँह देखना पड़े ! जिस कोख में उसने नौ महीने बिताये हैं, मैं भी उसी कोख से पैदा हुआ हूँ, उसी स्तन ने शैशव में उसका पोषण किया, उसी स्तन से मेरा भी शरीर बढ़ा है। जिस स्नेह से उसका लालन हुआ है, उसी स्नेह का मैं भी पूर्ण अधिकारी था। पिता की जिस गोद में वह बैठकर खेला है, मैंने भी उसी गोद में ऊधम मचाया है। हम दोनों एक ही माता-पिता के समान स्नेह और वात्सल्य के भागी रहे हैं। हम लोगों की बाल्यावस्था बराबरी के खेल-कूद और नटखटी में बीती है। हम लोगों ने एक ही साथ गुरु के यहाँ एक ही पाठ पढ़ा और याद किया। एक के दोष को दूसरे ने छिपाया। एक के लिए दूसरे ने मार खाई। संग में जंगल-जंगल शिकार के पीछे मारे मारे फिरे। भूख लगने पर एक कौर में से आधा मैंने खाया, आधा उसने। तब किसी बात का अन्तर न था—एक प्राण दो शरीर थे।

पर आज, समय ही तो है ! वह सिंहासन पर बैठकर आज्ञा चलावे, मैं उसके सामने भेंट लेकर नत होऊँ ! कुत्ते के टुकड़े

की तरह जो कुछ मेरे लिये वह फेंक दे, सो मेरा ! नहीं तो पिता-पितामह की, माता-प्रमाता की, पूर्वजों की इस विशाल सम्पत्ति पर मेरा बाल भर अधिकार नहीं ! आह ? दैव-दुर्विपाक ! एक छोटे से छोटे कारवारी के इतना भी अधिकार नहीं ! पूर्व महाराज की मुक्त औरस सन्तान का कोई ठिकाना नहीं ! क्यों ? इसी संयोग मात्र से कि मैं छोटा हूँ और वह बड़ा ! ओह, यदि आज मैं वणिक-पुत्र होता, तो भी पैतृक सम्पत्ति का आधा भाग उसकी नाक पकड़ कर रखवा लेता । किन्तु धिक्कार है मेरे क्षत्रिय-कुल में जनमने पर कि मैं दूर्वा की तरह प्रति क्षण पद-दलित होकर भी जीवित रहूँ, हरा-भरा रहूँ ! 'राजकुमार' ! कहा लाऊँ— 'छोटा महाराज !' कहा जाऊँ ! खाली घड़े के शब्द की तरह, रिक्त बादल की गरज की तरह कोरा अभिमान लिये इधर से उधर टक्कर खाता फिरूँ ! शिब-निर्माल्य की तरह किसी अर्थ का न रहूँ ! अपने ही घर में, अपने ही माता-पिता के आंगन में अनाथ की तरह ठोकर खाता फिरूँ ! विकिर के पिंड की तरह फेंका जाऊँ ! आह ! यह स्थिति असह्य है । मेरा क्षत्रिय-रक्त तो इसे एक क्षण भर भी सहन नहीं कर सकता । चाहे जैसे हो इससे छुटकारा पाना होगा । या तो मैं नहीं, या यह स्थिति नहीं । देखूँ किसकी जीत होती है ।

“एक क्षण का तो काम है ! एक प्रहार में उसका अन्त होता है । किन्तु क्या कायरों की तरह धोखे में प्रहार ? प्रताप के किये तो यह काम होने का नहीं ! यह तो चोरों का काम है ! दस्युओं का काम है ! हत्यारों की वृत्ति है !”

कुमार प्रतापवर्धन का चेहरा तमतमाया हुआ था ओष्ठ फड़क रहे थे। नस-नस में तेजी से खून दौड़ रहा था। मारे क्रोध के उसके पैर ठिकाने नहीं पड़ते थे। संध्या का शीतल समीर उसके उष्ण शरीर से टकरा कर भस्म सा हुआ जाता था। कुमार को बोध होता था कि सारा प्रासाद भूकम्प से प्रस्त है। अनेकानेक प्रेत-पिशाच उसे उखाड़े डालते हैं। क्षितिज में संध्या को लालिमा नहीं है, भयंकर आग लगी हुई है। प्रलय काल में देर नहीं।

जिस प्रकार ज्वालामुखी के लावा का प्रवाह आँख मूँद कर दौड़ पड़ता है और उसके आगे जो पड़ता है, उसे ध्वस्त करता चलता है; उसी प्रकार राजकुमार का मानसिक आवेश भी अंधा होकर दौड़ रहा था।

“क्यों प्रताप, आज अकेले ही यहाँ क्यों टहल रहे हो।”

अचानक पीयूष-वर्षा हो उठी। राजकुमार की ओर उसकी भाभी-महारानी—चली आ रही थीं। महारानी का प्रताप पर भाई-जैस प्रेम, मित्र-जैसा स्नेह और पुत्र-जैसा वात्सल्य था। राजकुमार उनके सामने आते ही बालक जैसे हो जाते। पर इस समय वे कुछ न बोले। महारानी ने फिर प्रश्न किया, पर राजकुमार अवाक् थे। कुछ क्रोध के कारण नहीं; महारानी के शब्द कान में पड़ते ही उनके हृदय को भीषण धक्का लगा था। क्रोध में भारी प्रतिघात हुआ था। और राजकुमार के लिये उस प्रतिघात का सहना असम्भव था। यदि प्रतप्त अङ्गार औचक शीतल पानी में पड़ जाय तो शतधा फट जाता है। उसी तरह उनके हृदय की दशा हो रही थी और, जब

महिषी ने तीसरी बार प्रश्न किया, तब प्रताप बच्चों की तरह रो पड़ा।

राजमहिषी इस गोरखधन्वे को जरा भी न समझ सकीं। उन्होंने फिर कोमलता से पूछा—“बोलो प्रताप, आज क्या बात है—तुम पर ऐसा कौन कष्ट पड़ा कि तुम रो रहे हो? मैंने तो कभी तुम्हारी ऐसी दशा न देखी थी! आज दोनों भाइयों में झगड़ा तो नहीं हुआ?”

प्रताप के आँसुओं की झड़ी ज्यों की त्यों जारी थी। कष्ट से हिचकियाँ लेते लेते उसने उत्तर दिया, पर वे समझ न सकीं।

कुमार का हाथ अपने हाथ में थाम कर दूसरा हाथ पोठ पर फेरते हुए वे बोलीं—“शान्त हो, शान्त हो, प्रताप! मेरा हृदय फटा जाता है। बोलो, बताओ, क्या बात है। चलो तुम्हारा उनका मेल करा दूँ।”

राजमहिषी ने समझा कि इसके सिवा अन्य कोई कारण नहीं। प्रताप ने बड़ी कठिनता से अपने आपको संभाल कर कहा—“भला मैं किस बल पर भाई का सामना करूँगा।

“प्रताप, ऐसी कटु बात न कहो। तुम्हें स्नेह का बल है, स्वत्व का बल है, इससे बढ़कर कौन बल हो सकता है। बोलो, क्या कारण है। कहो,—मेरा हृदय क्रन्दन कर रहा है।”

महारानी का कण्ठ रुँध गया था, उनकी आँखें भर आई थीं।

“कुछ नहीं भाभी ! मन ही तो है । यों ही कुछ बीते दिनों की याद आ गई । स्नेहमयी माता नहीं, पर तुम तो हो । अब तक मैं निरा बच्चा ही बना हुआ था । बस, यह बचपन की एक तरंग थी ।”

“नहीं प्रताप, तुम्हें मेरी शपथ है, मुझे अपना दुःख सुना दो । चाहे तुम्हारा हृदय ऐसा करने से हलका न हो, पर मेरा हृदय अवश्य हलका हो जायगा ।”

प्रताप ने उदासीन मुसकराहट से छूँछी हँसी हँसते हुए कहा—“कुछ नहीं भाभी, कुछ हो तब तो ! सन्ध्या की उदासी निराली अटारी, मन में कुछ सनक आ गई थी । अब कुछ नहीं । चलिए, आज हम लोग घूमने न चलेंगे ?”

“प्रताप तुम टाल रहे हो । इससे मुझे दुःख होता है । आज तक तुमने मुझसे कुछ छिपाया नहीं । जो दुःख-सुख हुआ, सब कहा । आज यह नई बात क्यों ?”

प्रताप फिर बच्चों की तरह सिसकने लगा । उसने महिषी के चरणों की धूलि सिर पर लगा ली ।

“भाभी; तुम्हारा बच्चा ही ठहरा, कहूँ न तो काम कैसे चले । कहूँगा, सब कहूँगा । पर ज़मा करो; इस समय चित्त ठिकाने नहीं है । फिर पूछ लेना ।”

“अच्छा घूमने तो चलो ।”

“नहीं, इस समय मुझे अकेले छोड़ दो भाभी ।”

“क्यों, तुम्हीं ने अभी प्रस्ताव किया था न ?”

“भाभी, वह कपट था ।”

“प्रताप, तुम—और मुझसे कपट करो ! कुमार, मैं इसे देवताओं की अकृपा के सिवा और क्या कहूँ । अच्छा जाती हूँ । किन्तु देखो, तुम्हें अपना हृदय मेरे सामने खोलना पड़ेगा ।”

रानी भी रोती रोती चली गई । राजकुमार रिक्त दृष्टि से उनका जाना देखता रहा । फिर वह खड़ा न रह सका, वहीं अटारी के मुँडरे पर बैठ गया ।

महारानी ने देखा कि सम्राट उद्यान में खड़े हैं । रथ तैयार है । उन्होंने भी महारानी को अकेली आते देखा—उनका उतरा हुआ मुँह देखा, लटपटाती गति देखी । हृदय में एक धक सी हो गई । पूछ बैठे—

“क्यों, प्रताप कहाँ हैं ? और तुम्हारी यह क्या दशा है ?”

“कुछ नहीं”—महिषी ने भर्राए स्वर से कहा—“चलिए घूमने ।”

“आज वह न चलेगा ? बात क्या है, कुछ कहो तो ?”—महाराज ने रूखे स्वर से पूछा ।

भृत्यवर्ग स्तम्भित था, चकित था । हाथ बाँधे हुए खड़ा तो था, पर हृदय में काँप रहा था—क्या होने को है ?

राजमहिषी ने महाराज के निकट जाकर थोरे-थोरे कुछ बातें कीं ।

“भाई पर क्रोध करके देश-द्रोही बनोगे”--कहते-कहते उस राजपूत-बाला की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं ।

शक्तिसिंह अपराधी की नाईं विचार करने लगा । जलन का उन्माद उसकी नस-नस में दौड़ रहा था । प्रताप के प्राण लेकर ही छोड़ेगा, ऐसी प्रतिज्ञा थी । नादान दिल किसी तरह न मानेगा । उसे कौन समझा सकता था ?

रण-भेरी बजी ।

कोलाहल मचा । मुगल-सैनिक मैदान में एकत्रित होने लगे । पत्ता-पत्ता खड़खड़ा उठा ।

बिजली की भाँति तलवारें चमक रही थीं । उस दिन सब में उत्साह था । युद्ध के लिए भुजायें फड़कने लगीं ।

शक्तिसिंह ने घोड़े की लगाम पकड़कर कहा--“आज अंतिम निर्णय है, मरूँगा या मारकर ही लौटूँगा ।”

शिविर के द्वार पर खड़ी मोहिनी अपने भविष्य की कल्पना कर रही थी । उसने बड़ी गंभीरता से कहा--“ईश्वर सद्बुद्धि दे, यही प्रार्थना है ।”

(२)

एक महत्वपूर्ण अभिमान के विध्वंस करने की तैयारी थी । प्रकृति काँप उठी । घोड़ों और हथियों के चीत्कार से आकाश थरथरा उठा । बरसाती हवा के थपेड़ों से जंगल के वृक्ष रणनाद करते हुए झूम रहे थे । पशु पक्षी भय से त्रस्त होकर आश्रय ढूँढ़ने लगे । बड़ा विकट समय था ।

उस भयानक मैदान में राजपूत-सेना मोरचाबन्दी कर रही थी। हल्दीघाटी की ऊँची चोटियों पर भील लोग धनुष चढ़ाये उन्मत्त के समान खड़े थे।

“महाराणा की जय !”—शैलमाला से टकराती हुई ध्वनि मुगल-सेनाओं में घुस पड़ी। युद्ध आरम्भ हुआ। भैरवी रणचण्डी ने प्रलय का राग छेड़ा। मनुष्य हिंस्र जन्तुओं की भाँति अपने-अपने लक्ष्य पर दूट पड़े। सैनिकों के निडर घोड़े हवा में उड़ने लगे। तलवारें बजने लगीं। पर्वतों के शिखर पर ये विपैले बाण मुगल सेना पर बरसने लगे। सूखा हल्दी-घाटी में रक्त की धारा बहने लगी।

महाराणा आगे बढ़े। शत्रु-सेना का व्यूह टूटकर तितर-बितर हो गया। दोनों ओर के सैनिक कट-कटकर गिरने लगे।

देखते-देखते लाशों के ढेर लग गये।

भूरे बादलों को लेकर आँधी आई। सलीम के सैनिकों को बचने का अवकाश मिला। मुगलों की सेना में नया उत्साह भर गया। तोप के गोले उथल-पुथल करने लगे। धाँय-धाँय करती बंदूक से निकलती हुई गोलियाँ दौड़ रही थीं—ओह ! जीवन कितना सस्ता हो गया !

महाराणा शत्रु-सेना में सिंह की भाँति उन्मत्त होकर घूम रहे थे। जान की बाजी लगी थी। सब तरफ से घिरे थे। हमले पर—हमला हो रहा था। प्राण संकट में पड़े। बचना कठिन था। सात बार घायल होने पर भी पैर उखड़े नहीं, मेवाड़ का सौभाग्य इतना दुर्बल नहीं था।

मानसिंह की कुमंत्रण सिद्ध होने वाली थी। ऐसे आपत्ति-काल में वह वीर सरदार सेना सहित वहां कैसे आया ? आश्चर्य से महाराणा ने उसकी तरफ देखा—वीर मन्नाजी ने उनके मस्तक से मेवाड़ के राजचिन्हों को उतारकर स्वयं धारण कर लिया। राणा ने आश्चर्य और क्रोध से पूछा—“यह क्या ?”

“आज मरने के समय एक बार राज-चिन्ह धारण करने की बड़ी इच्छा हुई है।” हँसकर मन्नाजी ने कहा। राणा ने उस उन्माद-पूर्ण हँसी में अटल धैर्य देखा।

मुगलों की सेना में से शक्तिसिंह इस चातुरी को समझ गया उसने देखा घायल प्रताप रण-क्षेत्र से जीते-जागते निकले चले जा रहे हैं और वीर मन्नाजी को प्रताप समझकर मुगल उधर ही टूट पड़े हैं।

उसी समय दो मुगल-सरदारों के साथ महाराणा के पीछे-पीछे शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा छोड़ दिया।

(३)

खेल समाप्त हो रहा था। स्वतंत्रता की बलिवेदी पर सन्नाटा छा गया था। जन्मभूमि के चरणों पर मर मिटने वाले वीरों ने अपने को उत्सर्ग कर दिया था। बाइस हजार राजपूत वीरों में से केवल आठ हजार बच गये थे।

विद्रोही शक्तिसिंह चुपचाप सोचता हुआ अपने घोड़े पर चला जा रहा था। मार्ग में शव कटे पड़े थे—कहीं मुजाएँ शरीर से अलग पड़ी थीं, कहीं धड़ कटा हुआ था, कहीं खून से लथ-पथ

मस्तक भूमि पर गिरा हुआ था। कैसा परिवर्तन है !—दो घड़ियों में हँसते-बोलते और लड़ते हुए जीवित पुतले कहाँ चले गये ? ऐसे निरीह जीवन पर इनता गर्व !

शक्तिसिंह की आँखें ग्लानि से छलछला पड़ी—

“ये सब भी राजपूत थे। मेरी ही जाति के खून थे ? हाय हाय रे मैं ? मेरा प्रतिशोध पूरा हुआ—क्या सचमुच पूरा हुआ ? नहीं, यह प्रतिशोध नहीं था, अधम शक्त ! यह तेरे चिर-कलंक के लिए पैशाचिक आयोजन था, तू भला पागल ! तू प्रताप से बदला लेना चाहता था—उस प्रताप से जो अपनी ‘स्वर्गादिपि गरीयसी’ जननी जन्म भूमि की मर्यादा बचाने चला था ! वह जन्म - भूमि जिसके अन्न जल से तेरी नस भी फूली-फली हैं। अब भी माँ की मर्यादा का ध्यान कर ।”

सहसा धाँय-धाँय गोलियों का शब्द हुआ। चौककर शक्तिसिंह ने देखा—दोनों मुगल-सरदार प्रताप का पीछा कर रहे थे। महाराणा का घोड़ा लस्त-पस्त होकर झूमता हुआ गिर रहा है अब भी समय है। शक्तिसिंह के हृदय में भाई की ममता उमड़ पड़ी।

एक आवाज हुई—“रुको ?”

दूसरे क्षण शक्तिसिंह की बंदूक छूटी, पलक मारते दोनों मुगल-सरदार जहाँ-के-तहाँ ढेर हो गये। महाराणा ने क्रोध से आँख चढ़ाकर देखा, वे आँखें पूंछ रही थीं—क्या मेरे प्राण पाकर निहाल हो जाओगे ? इतने राजपूतों के खून से तुम्हारी हिंसा तृप्त नहीं हुई ?

महाराज ने कहा—“यह सब कुछ नहीं, चलो, प्रताप से एक बार मैं तो बातें कर लूँ।”



प्रताप और महाराज आमने-सामने थे। प्रताप की आँखें भूमि देख रही थीं, किन्तु भौंहें तन उठीं थीं। महाराज हिमालय की तरह शान्त थे। उन्होंने जिज्ञासा की—

“भाई प्रताप आज कैसे हो रहे हो?”

किन्तु कुमार ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सम्राट् ने उसका हाथ थाम लिया और स्नेह से उसे सहलाने लगे। प्रताप के शरीर में एक भन्नाहट सी होने लगी, विरक्ति और घृणा से। क्रोध ने कहा कि एक भटका दो और हाथ छुड़ा लो। साहस भी था। पर भ्रातृ-भाव ने यह नौबत न आने दी। तो भी प्रताप ने कोई उत्तर न दिया।

“प्रताप, न बोलोगे? हम लोगों के जन्म-जन्म के स्नेह की तुम्हें शपथ है जो मौन रहो।”

“भैया”—यहीं प्रताप का गला रुँध गया। बड़ी चेष्टा करते हुए उसने कहा—“अब स्नेह नहीं रह गया!”

“क्यों क्या हुआ?”—महाराज इस उत्तर से कुछ चकित हो गये थे।

“भैया—क्षत्रिय-रक्त ने जोर किया और नदी का बाँध टूट गया—” प्रताप ने वयस्क होने के बाद पहली बार भाई से आँखें

मिलाकर कहना शुरू किया—“जिस जीवन की कोई हस्ती न हो, वह व्यर्थ है। हम दोनों सगे भाई हैं, तो भी—मैं कोई नहीं और आप चक्रवर्ती ! यह कैसे निभ सकता है।”

“तो लो, तुम्हीं शासन चलाओ, प्रताप !”

महाराज ने अपना खड्ग प्रताप की ओर बढ़ा दिया ।

प्रताप ने इस स्थिति की स्वप्न में भी कल्पना न की थी । वह किंकिर्त्तव्यविमूढ़ हो गया । महाराज साम्रह उसके हाथ में खड्ग देने लगे और वह पैरों पड़ने के सिवा कुछ न कर सका । तब महाराज ने उसे छाती से लगा लिया और समुद्र के से गंभीर स्वर में कहने लगे—

“सुनो प्रताप, ‘सम्राट्’ राष्ट्र की एक व्यक्ति में केन्द्रित सत्ता है । भाई हो अथवा बेटा, कोई उसे बांट नहीं सकता ! यह वैभव देखकर न चकपकाओ । राष्ट्र ने अपनी महत्ता दिखाने के लिये और उससे स्वयं प्रभावान्वित होने के लिये इस वैभव को, इन अधिकारी को, राजा से सम्बद्ध किया है । ये अधिकार सम्पत्ति के, विलासिता के, स्वेच्छाचारिता के द्योतक नहीं । यहाँ तराजू की कमाई नहीं है, जो तौल कर जुटती और तौल कर ही बँटती भी है । यह है शक्ति की कमाई; और वह शक्ति क्या है ? कच्चे सूत हाथी को बाँध लेते हैं, किन्तु कब ? जब एक में मिलकर वे रस्सी बन जाते हैं तब । हाँ, कौटुम्बिक जीवन में यदि हम तुम दो हों तो मैं अवश्य दण्डनीय हूँ ! समझे भाई !”

इसी समय राजमहिषी मुस्कुराती हुई महाराज से कहने लगीं—“ना, इसे लक्ष्मी चाहिये लक्ष्मी—आप समझे कैसी—गृह-लक्ष्मी !”

कुमार लज्जित हो गया । फिर वह हँसता हुआ सम्राट् सम्राज्ञी दोनों को सम्बोधित कर कहने लगा—

“क्या समय बिता के ही घूमने चलिएगा ?”



४

विद्रोही

[विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक]

(१)

“मान जाओ” तुम्हारे उपयुक्त यह कार्य न होगा ।”

“चुप रहो—तुम क्या जानो ।”

“इसमें वीरता नहीं है, अन्याय है ।”

“बहुत दिनों की धधकती हुई ज्वाला आज शांत होगी ।”
शक्तिसिंह ने एक लम्बी साँस फेंकते हुए, अपनी स्त्री की ओर देखा ।

“.....”

“.....”

“कलंक लगेगा, अपराध होगा ।”

“अपमान का बदला लूंगा । प्रताप के गर्व को मिट्टी में मिला दूंगा । आज मैं विजयी होऊँगा ।” बड़ी दृढ़ता से कहकर शक्तिसिंह ने शिविर के द्वार पर से देखा । मुगल-सेना के चतुर सिपाही अपने-अपने घोड़ों की परीक्षा ले रहे थे । धूल उड़ रही थी । बड़े साहस से सब एक-दूसरे में उत्साह भर रहे थे ।

“निश्चय महाराणा की हार होगी । बाईस हजार राजपूतों को दिन-भर में मुगल-सेना काटकर सूखे डंठल की भाँति गिरा देगी ।”—साहस से शक्तिसिंह ने कहा ।

किन्तु यह क्या शक्तिसिंह तो महाराणा के सामने नतमस्तक खड़ा था। वह बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो रहा था। शक्तिसिंह ने कहा—“नाथ ! सेवक अज्ञान में भूल गया था, आज्ञा हो तो इन चरणों पर अपना शीश चढ़ाकर पद-प्रक्षालन कर लूँ, प्रायश्चित्त कर लूँ ?”

राणा ने अपनी बाँहें फैला दीं। दोनों के गले आपस में मिल गये, दोनों की आँखें स्नेह की वर्षा करने लगीं। दोनों के हृदय गद्गद् हो गये।

इस शुभ महूर्त्त पर पहाड़ी वृक्षों ने पुष्प-वर्षा की, नदी की कल-कल धाराओं ने वन्दना की।

प्रताप ने उन डबडवाई हुई आँखों से ही देखा-उनका चिर-सहचर “प्यारा चेतक” दम तोड़ रहा है। सामने ही शक्तिसिंह का घोड़ा खड़ा था।

शक्तिसिंह ने कहा—“भैया ! अब आप विलम्ब न करें घोड़ा तैयार है।”

राणा शक्तिसिंह के घोड़े पर सवार होकर, उस दुर्गम मार्ग को पार करते हुए निकल गये।

(४)

श्रावण का महीना था।

दिन-भर की मार-काट के पश्चात् रात्रि बड़ी सुनसान हो गई थी। शिवरों में से महिलाओं के रोदन की कण्ठध्वनि हृदय को हिला देती थी।

हजारों सुहागिनियों के सुहाग उजड़ गये थे। उन्हें कोई ढाढ़स बँधाने वाला न था; था तो केवल हाहाकार, चीत्कार कष्टों का अनंत पारावार !

शक्तिसिंह अभी तक अपने शिविर में नहीं लौटा था। उसकी पत्नी भी प्रतीक्षा में विकल थी, उसके हृदय में जीवन की आशा-निराशा क्षण-क्षण उठती गिरती थी।

अँधेरी रात में काले बादल आकाश में छा गये थे। एकाएक उस शिविर में शक्तिसिंह ने प्रवेश किया। पत्नी ने कौतूहल से देखा, उसके कपड़े खून से तर थे।

“प्रिये”

“नाथ”

“तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हुई—मैं प्रताप के सामने परास्त हो गया !”



५

निर्मम

[जैनेन्द्रकुमार जैन]

(१)

अभी सिंहगढ़ ४ कोस है । दस कभी के बज चुके । ठीक दस बजे तीनों घुड़सवारों को शिवाजी की हाजिरी में सिंहगढ़ पहुँच जाना चाहिए था ।

शिवाजी की बात टलती नहीं, टलती है तो अनर्थ हो जाता है । समय और कार्य का विभाग ही उसका ऐसा नपा-तुला होता है कि जरा से काम की जरा ढील और जरा देर सारी योजना को ढा देती है. कार्य-सिद्धि को शृङ्खला को ही विशृङ्खल कर देती है । और सिवा वह व्यक्ति है जो सब कुछ सह सकता है, असफलता नहीं सह सकता । जिसने असफल होना जाना ही नहीं । जिसके जीवन की डोर विजय-विजय-विजय के मनके पहनकर वह माला बनकर ही दम लेगी, जिसे इतिहास के अनुशीलन करने वाले साहस-प्रार्थी व्यक्ति फेर-फेर कर धन्य होंगे । जो चाहता है, जिसमें हाथ लगाया है, वही यदि पूरा होने से रह जाय तो शिवा शिवा नहीं । कौन है, जो उसे पूरा होने से रोक ले । कहीं भी यदि उसे असिद्धि मिले, तो मानों वही उसकी मौत होगी । वह उस धातु का बना है जिसके अलौकिक वीर बने होते हैं । जिसका अलक्षेन्द्र बना था, जिसके अशोक, सोजर, शार्लमान बने थे, और जिसका नैपोलियन बना था । जो धातु मुड़ना नहीं जानती, टूट भले ही जाय !

तीनों घुड़सवार जो घने जङ्गल, घने अंग्रे और घने कुइरे को, जमी हुई सन्नाहट और वैसी ही जमी हुई शान्ति को चीरते हुए, तेजी से आगे बढ़ रहे हैं, शिवाजी के इस अकम्प शिवा-पन को मन-ही-मन, अनुभव-द्वारा खूब जानते हैं। थक रहे हैं, हाँफ रहे हैं, बढ़े चले जा रहे हैं, आपस में बोलने का भी अवकाश नहीं ले रहे हैं,—यह देखने कि ‘अब क्या बीतती है, वह, और हम भी, आत्मा की शपथ खाकर कह सकते हैं कि उन्होंने पूर्ण तत्परता, चुस्ती और मुस्तैदी से अपना कर्तव्य निबाहा है।—किन्तु १० तो बज चुके हैं।

बीजापुरकी खबर लाने के लिये उन्हें भेजा गया था। त्र्यम्बक उनका नेता है, घोरपड़े और शिवराव उनके सहायक। त्र्यम्बक शिवा का बहुत ही अपना आदमी है, जोखम और विश्वास की जगह उसे ही भेजा जाता है। उसे भेजकर शिवा मानों उस सम्बन्ध में बिल्कुल निश्चिन्तता प्राप्त कर लेता है।

त्र्यम्बक बोला— “महाराज यदि न मिलें—?”

यह सम्भावना तीनोंही के मनों में थी, किन्तु इतनी अनिष्टकर थी कि जैसे उसे स्वीकार करने से डरते थे। शिवराव ने कहा— “ऐसा नहीं होगा।”

घोरपड़े ने भी कहा— “महाराज, हमारे संवाद के लिये अवश्य प्रतीक्षा करेंगे।”

किन्तु त्र्यम्बक को सन्तोष नहीं मिलता। इन मुसीबत के दिनों में जब चारों ओर फैले प्रत्येक क्षण और प्रत्येक पगमें विपत्ति और विजय है, जब समयका ठिकाना नहीं है और ठिकाने का भी

ठिकाना नहीं है, तब नियत दस बजे के बारह बज जाना कोई छोटी बात नहीं। वह इसी भारी भूल के बोझ और मनस्ताप के नीचे मानों पिसा जा रहा है। उसने कहा—“घोरपड़े, मालूम नहीं क्या हो गया हो। सन्देह नहीं, दस बजे महाराज वहां अवश्य होंगे, पर अब ?..... बीजापुर में ही हमको समाचार मिला था कि सिंहगढ़ आशंका से खाली नहीं। न जाने किस पल धावा हो जाये ?”

घोरपड़े ने उत्तर मेंकेवल घोड़े की चाल और तेज कर दी।

तीनों बढ़े चले। चुप—चारों ओर सन्नाटा भरी चुपचुपाहट थी। मानों नीरव प्रकृति, इन तीनों के भीतर उबलती हुई आशङ्का को अपने व्यङ्ग्य-मौन से और भी तीखी बना देना चाहती हो।

सिंहगढ़ पास आ गया। अन्वेषण में से उसके बुर्ज के कङ्कारों का आकार धीमा-धीमा चिन्ह पड़ता था तभी कोई उनकी राह में आया, जिसने पृष्ठा—“कौन” !

इस “कौन” का स्वर और लहजा एकदम सशङ्क कर देने वाला था। फिर भी त्र्यम्बक ने दहाड़ा—

“ऊँ, हर हर !”

उस व्यक्ति ने झट से चिल्ला दिया—“मारो काफिरों को” और दल-के-दल दुश्मन उस अन्वेषण में से फट पड़े।

युद्ध छिड़ा। मराठे मराठे थे, शिवाजीके साथी थे,—यानी वीर थे, और साथ ही होशियार भी थे। फिर अन्वेषण का संयोग मानों

भाग्य ने ही सामने ला धरा था। तोखी मार भी वे देते रहे, और पीछे अपना रास्ता भी बनाते रहे।

अपनी हानि और मराठों के पीछे हटने को देख दुश्मनों ने सन्तोष ही मान रखना ठीक समझा।

वे तीनों निरापद तो हुए किन्तु सिंहगढ़ तक पहुँचने का इरादा अब भी उनका पक्का ही रहा। मन्देह नहीं, उन्हें जगह-जगह ऐसी ऐसी ही मुठभेड़ करनी होगी,—किन्तु क्या इससे वह शिवाजी काबा से मुड़े ?

तलब कि कभी इधर कभी उधर, इस तरह चारों ओर से, सिंहगढ़ पहुँचने का यत्न करते रहे। बीसियों हमले उन्हें सहने पड़े, और बहुत आहत हो गये। इधर रात भी बीत चली। किन्तु यत्न छोड़ें, तो मराठे कैसे ?

अन्त में थकान से चूर हो गये थे, लोहू से लुहान हो गये थे, फिर भी सिंहगढ़ पहुँचने की तदबीर में लगे थे—यद्यपि बड़ी हताशा के साथ और जीवन विसर्जन के पूर्ण विश्वास के साथ। तभी एक खेतिहर से पता मिला, शिवाजी सिंहगढ़ में नहीं हैं !

रात होते ही गढ़पर अचानक धावा हुआ था। दस, साढ़े-दस, ग्यारह बजे तक, कई गुनी शत्रु शक्तिके सामने शिवा गढ़ को संभाले रहे और ठहरे रहे थे। बहुतेरा कहा गया कि वह यहां से चले। किन्तु ग्यारह बजे से पहिले उन्होंने वहां से टलना कभी स्वीकार न किया। भेदिया चारों ओर तैनात रहते थे। जब ग्यारह बजेका यह समाचार लाकर उन्होंने शिवाको दे दिया कि एक मील तक त्र्यम्बक नहीं है, तब उन्होंने गढ़ छोड़ने में फिर क्षण-भर देर न की।

व्यम्बक और उसके साथी इम सूचना पर, अपने को प्रत्येक अनिष्ट और हर तरह के दण्ड के लिये तैयार करके, लौट चले ।

(२)

जङ्गल में एक ऊँची सी टेकड़ी पर शिविर पड़ा है किन्तु शिवा उससे अलग, बहुत दूर, आत्म-व्रस्त, आत्म-ग्रस्त और आत्म-व्यस्त भाव से कुछ सोचता हुआ टहल-सा रहा है । शिविरके कामसे निवट चुका है, सब ताकीदें दे चुका है,— इस तरह अवकाश निकालकर अब अपने निवटने का काम वह, यहाँ सिर झुकाकर टहलता-टहलता कर रहा है । सिद्धियों, सफलताओं, और विजयों से ठसाठस भरे हुए अपने व्यस्त जीवन में से, वह इसी तरह कभी-कभी कुछ घड़ियां चुग कर आत्मनिमग्नता पाया करता है । इन बहुमूल्य निठल्ली घड़ियों में जो बड़ी कठिनाई से मित्र पाती हैं और बहुत थोड़ी देर ठहर पाती हैं, मानों उसके जीवन की सच्ची अनुभूतियाँ, कसक उठने वाली स्मृतियाँ और प्रज्वलित कर देने वाली चिन्ताएँ,— मानो जीवन की समग्र चेतनता,— अपने डोरे समेटकर आ इकट्ठी होती है । तब वह डोरे फैलते हैं, उलझते हैं और सुलझते हैं, किन्तु उतने सुलझते नहीं जितने उलझ जाते हैं । इन उलझनों में फँसकर शिवा बड़ी व्यथा पाता है । सुलझा तो सकता नहीं क्योंकि सुलझने का अवकाश उसके पास बहुत थोड़ा है, इसलिए उलझते रहने में ही वह थोड़ा आनन्द ले लेता है । वह व्यथा जो मजे से भरी है, और यह मजा जो टीस सा चुभता है, यहीं इसीमें पड़कर, शिवाको ज्ञात होता है जैसे जीवन के रस का थोड़ा स्वाद मिल रहा हो । नहीं तो उस खोखले, कृत्रिम, कर्तव्य-बद्ध राजापन-प्रसिद्धि और प्रभुत्व के जगमगे जर्क-बर्क आवरण पहिने, रूखे जीवन से उसे रह-रहकर एकताहट छटती है ।

उसे बहुत कुछ स्मरण हो आती है, वह माँ की गोद, जो अब नहीं रह गई है। उसके स्थान पर सिंहासन आ गया है। निर्जीव पत्थर का यह सिंहासन सजीव प्यार के माँ के उस घोंसले की, मानों अपने मद में, खिल्ली उड़ाता है—कम्बलन सिंहासन से शिवाके प्राण मानों एक बारगी ही चिढ़ उठते हैं। यह सारी प्रसिद्धि, वैभव और मनुष्यता का व्यङ्ग करते दीखते हैं।

उसे स्मरण हो आता है वह रक्त, जो उसने बहाया। वे जानें, जो उसने ली हैं। उससे भी अधिक वे जानें, जो उसके लिए गई हैं। जिन्हें उसने मारा है, और जो उसके लिए मर गये हैं, उनके बिलखते हुए कुटुम्बी और उन कुटुम्बियों के आविरल दुरकते हुए आँसू,—इन सबकी कल्पना, स्मृति और चित्र भीतर से उमड़ते हुए और उसके जी को मरोड़ते हुए उठते हैं। उसे ज्ञात होता है, मानों उन सबकी हत्याओं और उन दुखियों के दुखों को कुचले हुए खड़ा है उसका राजा-पन !

और स्मरण हो आता है वह हृदय का वेग जो बच्चों को देख-कर उमड़ा पड़ता है। वह बाला, जो उसे बचाते-बचाते मर गई, इसलिए कि वह उसे अपना हृदय और अपना सर्वस्व देना चाहती थी। उसने उस हृदयोत्सर्ग के अर्घ्य अर्पण को स्वीकार किया और उसे कुचल दिया। और वह, जब औरङ्गजेब के यहाँ गया था, जो अचानक दीख गई थी और मिल गई थी,—जिसका प्रणय वंश और धर्म, सभ्यता और समाज के सब बन्धनों को लाँचकर उस तक पहुँचता है और इतना कि जिसके रस में वह डूब जाय ! वह निसर्ग शुद्ध प्रणय-रस की धारा उसे याद आती है, जिसे वह बू नहीं सकता !

और सामने दीखते हैं पेड़, जो लताओं को चिपटाये मूम रहे हैं, हँस रहे हैं, मानो कह रहे हैं— तुम बड़प्पन की भूख में रहो, इधर हम तुम पर हँसते हैं।” और फिर मानो अपना मुकुट झुकाकर, फुसलाकर, चुपके से आवाहन दे जाते हैं—‘व्यर्थता में न पड़ो, आओ; हमारे साथ जीवन में निर्वन्द खेलो।’ हरी घास, छोटे-पौधे, उभरा हुआ पहाड़, भागते खेलते बादल, और उनके पीछे धूप की मुसकान से मुसकाता नीलाकाश, फुदकती चिड़ियाँ और चहकते पक्षी—सब, मानो अपने जीवन की चुहल दिखाते हुए व्यंग कर रहे हैं—यह है जीवन !

शिवा इस रस को देख रहा है। देख-देखकर, क्योंकि इसे वह चख नहीं सकता, बड़ा भुँभला और कुढ़ रहा है। कैसा बेलाग बेदाम बिखरा पड़ा है यह रस !

उसकी फतहों की सूची उसे निकम्मी जान पड़ती है। सफलताओं की लम्बी तालिका उसके मन को बोध नहीं दे पाती।

जब उसका मन हार जाता है, स्मृतियाँ दबा लेती हैं, और ऐसी चिन्ताएँ अभिभूत कर लेती हैं, तब उसके एक-मात्र त्राण समर्थ गुरु रामदाम याद पड़ते हैं। वह उनकी शरण गहेगा। अब के इस यश, वैभव, राजत्व, लड़ाई और हिंसा के मार्ग से मुक्ति पाने की प्रार्थना करेगा। साधारण बन जाने और प्रेम करने की छुट्टी अबके वह भी गुरु से माँग लेगा। व्यस्तता से वह तङ्ग आ गया है, कहेगा—“गुरु बहुत हो गया, अब मुझे छुट्टी दो। अब मैं स्नेह में नहाऊँगा और जीवन में खेलूँगा।”

मनके इसी ज्वर को जरा शांत करने के लिए वह टहलता—टहलता एक शिला पर बैठ गया। सन्ध्या चुपचाप सरकी आ रही

थी। मानों अपनी अंधियारी साड़ी में से थोड़ी स्निग्धता और शान्ति भी बिखराती आ रही हो।

शिवा की गोद में एक टीढ़ी आ पड़ी। शिवा उसे देखता रह गया। मानों वह अपनी धुन में है, शिवा को उसे खाक पर्वाह नहीं। मानों किसी नये खेल की टोह में जा रही है।

शिवा ने पकड़ने को हाथ बढ़ाया कि वह फुदककर भाग गई।

सामने से एक चिड़िया उड़ी,—टि टी हु ई टी। और गाकर बैठ गई दूसरी चिड़िया के पास। और वे दोनों चोंचें मिला कर अभिन्न प्रेम-सम्भाषण करने लगीं।

ऊपर एक बादल का टुकड़ा भागा जा रहा था—एक और को पकड़ने। देखते देखते वे दोनों मिले और आपस में गुँथ गये।

शिवा ने कहा—“अच्छा भाई, मिलो, मिलो। मैं भी अब तुम्हारी समाज में आता हूँ।”

उस समाज में उसकी प्रवेश-प्रार्थना पर कैसा स्वागत मिल रहा है, यह वह समझ पाये हो कि उसने सुना—‘महाराज !’

मुड़कर देखा—एक युवक है। वह युवक उसके चरणों पर आ पड़ा।

वह युवक है, नया है, फिर भी नया नहीं है। कुछ है उसमें, जो जाना-सा मालूम पड़ता है।

फिर सुन पड़ा—‘महाराज !’

इस बातावरण में और इस नये प्रकार के उठे-हुए विचार-क्षेत्र में शिवा अपना सदाँरपन भूल बैठा था। अभी उसे अपने में उस 'बू' को लाने को जल्दी भी न थी। कहा—

‘कहो भाई ।’

युवक ने कहा। क्या कहा सो शिवा न समझ सका। जो कहा गया था उसका आशय नहीं, उसका स्वर उसने सुना—वही उसने समझा और तब उसने गौर से युवक को देखा।

युवक के सारे गात में एक सिहरन लहराई, आँखें झपीं सीं, और मामूलो-सा सिंदूरियापन दौड़ गया। शिवा से यह छिपा-न रहा, और उसके भीतर एक गुदगुदी सी मच उठी।

“तुम्हें भाई नहीं कहना चाहता, बहन भी नहीं कहना चाहता। क्या कहूँ ?” शिवा ने हँसकर, कँपकर पूछा।

युवक, जो युवती था, शर्मा गया।

जङ्गल सूना था, पर शिवा मजबूत था। फिर भी उसकी मजबूती, पिछले विचार-प्रवाह से, मानों पिघल उठी थी। यह हो नहीं सकता था कि वह मजबूती रिसकर वह जाती, तो भी शिवा ने उस पर विश्वास रखना उचित न समझा।’ पूछा—“हाँ, क्या चाहती थीं ?”

—“नौकरी।”

“छिः। नौकरी किया करते हैं कहीं !”

“सेना में नौकरी चाहती हूँ।”

“मारने का काम करोगी ? वह काम क्या तुम्हारे बसका है ? तुम्हें तो जीने और जिलाने का काम करना चाहिए । क्यों !”

“हाँ ।”

“सेना में क्यों जाना चाहती हो ?”

“मारने नहीं ।”

“फिर ?”

“बचाते-बचाते मारना चाहती हूँ । आपको मारने वाले बहुत हैं ।”

इतने साहस की बात कहने के पश्चात् मानों युवती का साहस चुक गया । शिवा का जी पसोज गया । इस उत्कण्ठित उत्सर्ग की आकांक्षा को देख वह धन्य हुआ । किन्तु वह क्या इसके तनिक भी योग्य हैं ? उन्हें बस यही अधिकार है कि वह इस उत्सर्ग को ले, और इसी पर अपने शरीर की रक्षा प्राप्त करे । उसे अपनी स्थिति पर आन्तरिक खेद हुआ ।

उसने कहा—“बाई, यह क्या कहती हो ?—क्या जाने यह नौकरी ही न रहे, सेना ही न रहे । और फिर मेरा शत्रु बनने की भी किसी को आवश्यकता न रहे । जाओ बाई, ऐसा ध्यान न करो । मेरी शपथ, जो ऐसी बात तुमने मन में रक्खी । शिवा का जीना अभी बहुत भारी है । फिर तो उस जीवन को उठाना ही कठिन हो जायगा ।”

युवती शिवा के पैरों में पड़ गई। शिवा ने उसे उठाया, कुछ कदम उसके हाथ पकड़े, उसके साथ गया, और बिदा किया, कहा—
“मेरा मार्ग न बाँध दिया गया होता तो क्या मैं जान-बूझकर धन्य होने से वचता ? बाई, जाओ शिवा बड़ा अपात्र व्यक्ति है।”



वहीं, उसी शिलाखण्ड पर बैठा था कि त्र्यम्बक अपने साथियों सहित उपस्थित हुआ

“महाराज !”

“अरे त्र्यम्बक !”

“क्षमा करें, महाराज !”

त्र्यम्बक ने अपनी पूरी कहानी कही। शत्रुओं के साथ मुठभेड़ की और अपने घावों की बात बहुत संक्षेप में बतलाई। फिर कहा—

“क्षमा करें, महाराज !”

शिवाने कहा— “त्र्यम्बक मैं वही मार्ग पकड़ना चाहता हूँ, जहाँ क्षमा ही क्षमा है। जहाँ क्षमा माँगने की आवश्यकता ही मिट जाती है। वह छोड़ना चाहता हूँ, जहाँ दण्ड ही दण्ड है। मैं थक गया हूँ। यह नित्य की नई लड़ाई, खोने को रोज नई जानें, और लड़ने को नई जानें, नये अपराध और नये दण्ड—मैं इन सब से घबड़ा गया हूँ। मैं चाहता हूँ, ये कुछ भी न रहें। हम-तुम भाई बन कर रहें, जैसे कि हम भाई-भाई हैं।—”

त्र्यम्बक, घबड़ाया—“महाराज !”

शिवाने कहा— “त्र्यम्बक, शिविर में जाओ। बहुत कुछ करना है। पर अच्छा है, यह सब करना-कराना शेष हो जाय। औरङ्गजेब की सेना इधर बढ़ी आ रही है। उधर कुछ अपने लोग भी चारों-ओर से हमें घेरने के प्रयत्न में हैं। इन सबको भिकाने और इनसे बचने को क्या करना होगा, सो सब मैं कर आया हूँ। दक्षिण की ओर एक टुकड़ी भी जायगी। बीजापुर की स्थिति सुनकर कुछ करने की जरूरत होगी। वैसे भी, अपनी हालत और वहां की हालत को देखते हुए, तुरन्त कुछ कर बैठना ठीक नहीं। जहां से सहायता का वचन है, उसकी भी उचित प्रतीक्षा करनी ही चाहिए। इस तरह परसों तक हम यहीं हैं। तब तक कुछ भी आँच यहाँ तक पहुँच सकेगी—यह असम्भव है। इसलिए मैं आज श्री समर्थगुरु के पास जाता हूँ। परमों प्रातः ही यहाँ पहुँच जाऊँगा। कोई मेरे साथ नहीं जायगा। तुम लोगों को तैयार रहना चाहिए। यदि श्री गुरु ने मेरी प्रार्थना स्वाकार न की, तो परसों १० बजते-बजते सबको पाँच टुकड़ियों में बँटकर यहाँ से कूच कर देना होगा।”

फिर हृदयकांक्षा से भीने स्वर में कहा—“त्र्यम्बक, मैं गुरु के पास छुट्टी मांगने जा रहा हूँ, जिससे इस भंभट से हम सब मुक्त हों और प्रकृति के सच्चे प्राणी होकर रहें। यदि इच्छा स्वीकृत हुई, तो तुम्हें सूचना दूँगा,—कोषमें जो कुछ है वह सब लोगों में बाँट देना और उन्हें विदा दे देना। मैं कुछ दिन गुरु के पास ही, और फिर किसी खेड़े में रहूँगा। ...”

त्रयम्बक ने कहा—“महाराज !”

शिवाने कहा—“जाओ, जैसा कहा वैसा करो ।”

त्रयम्बक चला गया ।

(३)

श्री समर्थगुरु के पास चरणों में ।

“क्यों, शिवबा, क्या है ? ”

गुरुवर. बड़े क्लेश में हूँ ।”

“क्लेश ? कैसा क्लेश ?—क्या फिर उकताहट उठती है ?
मैंने तुम्हें बताया, उकताहट का यह स्थान नहीं । कर्म अनिवार्य है और मनुष्य नितान्त स्वतन्त्र नहीं है । कर्म की परिधि में घिरा है, बस परिधि के भीतर स्वतन्त्र है । परिधि से बाहर भागकर वह नहीं जा सकेगा । इसे वह अपना दुर्भाग्य समझे या सौभाग्य,—जगत का तन्त्र ही ऐसा है ।”

“भगवन्, कर्म की अनिवार्यता तो मैं स्वीकार करता हूँ ।
किन्तु हँसना खेलना भी तो कर्म है । प्यार करना भी तो कर्म है । जीवन के विनोद में बह चलना भी तो कर्म ही है । पानी बहता है और खेलता है, चिड़ियाँ उड़ती हैं और चहकती हैं, पेड़ फलते हैं, फूलते हैं और मूमते हैं, सम्पूर्ण जगत् ही मानों आनन्द के सक्रिय समारोह में तन्मय योग देता रहता है । फिर मेरे ही जिम्मे यह लड़ना-भारना क्यों

है ? बहुत-सी जीवन की लहरों को बलात् रोककर और अस्वीकार करके एक बनावटी कर्तव्यशासन में बंधे रहना, जगत् के और प्राणियों को छोड़कर, मेरे ही लिये क्यों आवश्यक है ? गुरुवर, मुझे इस निश्चल प्रकृति को देखकर ईर्ष्या होती है, और अपने बन्धनों पर बड़ी खीज होती है ।”

स्वामी रामदास ने स्पष्ट देखा, शिवबा वितृष्णा सच्ची है, फिर भी मोह जन्य है । जो सामने सरस दीख पड़ता है, उसी से ललचाकर, अपने में यह विरागाभास उसने उत्पन्न किया है । वे बोले—“शिवबा, भूलते हो । जिसको जिस तरह देखते हो, वह वैसा ही नहीं है । जो हँसता दीखता है, क्या मालूम वह उसका रोना हो । इसलिये दूसरों की हँसी पर मत लुभाओ । खुद हँसना सीखो, और वह तभी सीख पाओगे, जब जो कुछ होगा उसी पर हँसोगे । दुःख पर वैसे ही हँस दोगे, जैसे सुख पर । यह उकता उठना छोड़ दोगे । तुम, सम्भव है, मुझे मुक्त समझो । हाँ मैं अपने को मुक्त समझता हूँ । पर तुम भी यदि मेरी ही तरह हो जाओ, कोपीन धार लो और सन्यासी बन जाओ, तो आत्मा का असन्तोष ही पाओगे । सबके मार्ग भिन्न भिन्न हैं, यद्यपि सबका अन्त एक है । वह मार्ग किसी के लिए भी मखमल-बिछा नहीं है, वह तो दुर्घर्ष ही है । जो उस मार्ग पर चलना ही नहीं आरम्भ करते, उनकी बात छोड़ दो,— वे तो सचमुच उच्छङ्खल रहकर जो जी-चाहा उसमें भूल रह सकते हैं । पर जो मार्ग पर चलने के अधिकारी हो गए, फिर उन्हें जी-चाहे जो करने का अधिकार नहीं रहता है । उनका तो मार्ग खड्ग की धार की तरह एक-रेखा-रूप, निश्चित

और सकरा बन जाता है । तुम्हारा मार्ग राजा का है, मेरा मार्ग साधु का है । हम दोनों की पूर्णता और आत्मोपलब्धि अपने-अपने मार्गों में है । राजा संसार का साधारण गृहस्थी नहीं है, वह बड़े दायित्वों से बँधा है । इसलिए उसके कर्तव्य-अकर्तव्य की परिभाषा गृहस्थ के पैमाने से नापकर नहीं बनेगी । उसे अधिकार नहीं, कि वह सहज-प्राप्य अपनी आत्म-तुष्टि ढूँढ़े, अपने विलासका आयोजन करे । क्योंकि उसे बहुतों के सुखों और जीवनों की रक्षा का भार सौंपा जा चुका है । क्या अपने सुखों को दूसरों की सुविधा के लिए उत्सर्ग कर देने का यह अधिकार प्रत्येक को मिलता है ? इसके अधिकारी बिरले होते हैं । तो क्या तुम इस अधिकार से विमुख होगे ? तुम्हें कितना बड़ा उत्सर्ग करना पड़ रहा है, मैं जानता हूँ । जो चीज तुम्हें दुख पहुँचाती है, हिंसा वही करने पर तुम बाध्य हो । यश, प्रतिष्ठा, जिससे तुम भागना चाहते हो, वे ही तुम्हें चिपटानी पड़ती हैं । यह महान् उत्सर्ग है, मैं मानता हूँ । किन्तु मैं समझता हूँ, शिवबा, यह विराट् उत्सर्ग का अवसर—जो तुम जैसे बिरलों को ही मिलता है,—तुम खोओगे नहीं ।”

शिवा की आत्मा को इन शब्दों से बोध तो हुआ, पर हृदय की व्यथा पूरी न मिट पाई । वह बोला—

—“महाराज, मैं नहीं जानता, पर जी बेचैन रहता है । करता हूँ, पर अकुलाये मनसे.....।” “ठहरो” गुरुजी ने कहा—
“समझने में तुम्हें आयास और समय की आवश्यकता होगी । इस बीच मेरा आदेश समझकर ही मानो । आदेश में शङ्का न

करो पाप लगता है। जाओ— औरङ्गजेब की सेना बढ़ रही है। ब्राह्मणों का अपमान, धर्म पर अत्याचार और गौत्रों की हत्या हो रही है। भारत की भारतीयता खोई जा रही है। इसकी रक्षा करो”

शिवा चरणों में पड़ा।—भगवान !”

—“जाओ, शिवबा कर्म करो। शङ्का न करो, आकांक्षा न करो। निशङ्कित आस्था रखो, निःकाङ्क्षित कर्म करो।”

शिवा पद-धूलि लेकर चला गया।

(४)

टुकड़ियाँ बँट गई हैं। शिविर उखड़ने को है। सब अपने अपने काम पर कूच करने की तैयारी कर रहे हैं। वही ‘परमों’ आ गया है और वही शिवाजी—लड़ाई का उत्कट, उद्भट, चपला की तरह चपल शिवाजी,— आ गया है।

तभी त्र्यम्बक का मुकद्दमा हाथ में लिया। त्र्यम्बक पेश हुआ।

शिवा अब मानों कर्तव्य-ही-कर्तव्य है। हृदय जो भावना का स्थान है, पानो शिवा ने उसे बिल्कुल सुला डाला है। हाँ मस्तिष्क, जो विचार और विवेचना का स्थान है, पूर्ण सजग है। बोला—

“त्र्यम्बक, तुम्हारा अपराध अक्षम्य है। मेरे निकट क्षमा वैसे भी अक्षम्य है। तुम्हें सबसे बड़ा दण्ड जो मैं दे सकता हूँ, देता हूँ। तुम घर जाओ, रहो, तुमसे और सेवा मैं नहीं ले सकूंगा।”

सचमुच दण्ड त्र्यम्बक के लिए इससे बड़ा न हो सकता था । वह सब कुछ कर सकेगा, पर शिवा को छोड़ना ! -यह कैसे होगा ? मौत मञ्जूर होती, पर यह तो उम्र स्वामिभक्त के लिये बिलकुल असह्य ही है ।

उसने बहुत विनती की । पर शिवा की बात शिवा की बात है, भुकेगी नहीं ।

*

*

*

वह,—वही, युवक भी हाजिर हुआ । शिवा की आँखों में सरसता की भाँई भी नहीं है । केवल एक वस्तु है—प्रभुत्व ।

“नौकरी चाहते हो ?”

“जी !”

“अच्छा ।”

फौजदार को इस नये सिपाही को बाकायदा शपथ-पूर्वक भर्ती कर लेने का हुक्म हुआ ।

*

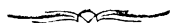
*

*

लड़ाई हुई । धावा अचानक का था । शिवा का बचना असम्भव था,— पर भाग्य कहिये, बच गया । भाग्य को श्रेय देते हुए शर्म आती है । किन्तु एक छोटे से अनजाने सिपाही को श्रेय देने का कायदा इतिहास का नहीं है । कोई उत्सुक पूछे ही, तो इतना बता सकते हैं कि एक तलवार का भरपूर हाथ जो ठीक शिवा जी की गर्दन पर पड़ता, और पड़ता तो कभी अकारण न जाता, एक नये युवक सिपाही की पीठ पर पड़ा ! वह सिपाही फिर ज्यादा देर तक जीता न रहा और उसके साथी भी भली प्रकार उसके गाँव-पते का

पूरा पता न चल सके । क्योंकि शिवा ने तुरन्त लाश अपने खास शिविर में मँगा ली थी, और फिर कोई बाहरी आँख उस पर न पड़ सकी थी ।

शिवा ने उस लाश को क्या किया ? उसे आँसुओं से तो भिगोया ही,—फिर क्या किया, नहीं कहा जा सकता ।



उसके बाद ?

[उषादेवी मित्र]

मत्त हाथी-सी गाड़ी की गति अचिराम थी— भक् भक् भक् ! यात्रियों की गुनगुनाहट, तर्क, सिगरेट के धुएँ और कलकंठ के हास्य से एक मूर्त सजीवता विराज रही थी। प्रत्येक वस्तु और जीव सचल थे। केवल एक सुकुमार युवक खिड़की से मुँह निकाले चुपचाप बैठा था। चलचित्रों के समान मनोरम दृश्य उसकी मुग्ध पुलकित दृष्टि से अन्तर्हित होते जाते थे। कदाचित् उसके शिल्पी हृदय में उनकी परछाईं ही नहीं वरन् उनके रूप और जीवन भी आँकते जाते थे। रेल की वह गति और डब्बे का अविरल कोलाहल उसके ध्यान की तन्द्रा पर लघु आघात भी नहीं कर सकते थे, मानो साक्षात् मृत्युञ्जय ही साधना के ध्यान में बैठे हों।

कहीं गेहूँ की हरी बालें उन्नत सिर लिए खड़ी थीं। कहीं गायों का झुंड नदी-तट पर उतर रहा था। पर्वत-हृदय पर कहीं छोटी कुटी सूरजमुखी फूल सी खिल रही थी। लकड़ी की गठरी लादे कोई स्त्री झुकती चली जा रही थी। कहीं कपोत दम्पती बच्चे को चुना रहे थे। शिल्पी के अतृप्त नयन उनके माधुर्य से ओत-प्रोत से, दुनिया को भूले-से दूसरे दृश्य पर अटक रहते।

वह था चित्र नगर के महामहिम प्रबल प्रतापी राजा सुबाहु का विश्वविख्यात शिल्पी दिनकर। लोग कहते थे।—उसकी प्रस्तुत मूर्तियों में जीवन पड़ जाता, चित्र सबाक् हो जाते। युवक राजा सुबाहु उसे भृत्य की तरह नहीं, मित्र सा मानते आदर सम्मान

करते। दिनकर देश-पर्यटन में निकला था, एक साधारण मनुष्य की भांति। बनाव-सिंगार तो उसे छू भी न गया था, न घमंड, न लालसा। वह अत्यन्त साधारण जीवन व्यतीत करता था। राजा के प्रिय शिल्पी को किसी बात की कमी न थी, किन्तु वह किसी ओर कभी लौटकर देखता नहीं। लोगों का कहना था—दुनियां में यह अकेला है, भाई-बन्धु, स्त्री-पुरुष कुछ भी नहीं। दिनकर यह सब सुनता और सुनकर रुमाल की आड़ में मुसकराता उसको सहचरी, कल्पना की जीवित किन्नरी और नित्य नवीन सवाक् प्रकृति रानी की इन्हें भला क्या खबर। वही तो उसकी स्त्री, कन्या, माता, प्रिया, प्रेयसी, जीवन, सब कुछ था। फिर उसे जगत् के कोलाहल से, दान-प्रतिदान से सम्बन्ध? वह सन्तुष्ट था, तृप्त था और था विस्मय से विमूढ़—कल्पना किन्नरी और प्रकृति तिलोत्तमा से नित्य नवीन रूप से।

एक तीर्थस्थान के प्लेटफार्म में गाड़ी रुकी। कुछ लोगों के साथ वह उतर पड़ा। दिनकर हँड केमरा लेकर चला। उसकी सौन्दर्य-प्यासी आँखों के सामने जो वस्तुएँ उत्कृष्ट जर्चों, उनके चित्र भी वह केमरा में खींचता गया। गंगा के विशाल तट पर वह खड़ा हो गया! उसकी आँखें गड़ सी गयीं; भीड़ पर नहीं गंगा के कीचड़-म्लान जल पर। न जाने उस धुले जल में उसकी दृष्टि ने कौन से सौन्दर्य, कौन से नूतनत्व का अविष्कार किया। भूखा—प्यासा उस धूप में वह अवाक् खड़ा रह गया।

हास्य, रुदन, विलाप, कलह से गंगा तट कोलाहल-मुखर हो रहा था। दूकानों पर बालक झुके थे। कोई वृद्धा भीड़ के पैरों से दबी चिल्ला रही थी। तरुणियों की रेशम-सी केशराशि जल पर

लहरा रही थी। कितनी वृद्धाएँ जल में खड़ी माला जप रही थीं। नागा संन्यासियों के गेरुए वस्त्रों पर सूर्यकिरण दीप्त थी

दुनिया की उस नूतन रूप-छटा से शिल्पी अपना परिचय आरम्भ करने जा रहा था, परन्तु एक सुरीली, मीठी, बाँसुरी-सी आवाज से दिनकर मानों सपने से जागा।

“लीला बहन, पकड़ो, डूबी जाती हूँ।”

उसने उस ओर देखा। रूप रानी-सी तरुणी गंगा-हृदय में साक्षात् गंगा की ही तरह सखी को पुकार रही थी। उसके दीर्घ केश से पानी की नन्हीं नन्हीं बूँदें भर रही थीं। भीजी साड़ी बदन से सट गई थी, हाथ के कंकण पानी में झिलमिला रहे थे। दिनकर विस्मय मुग्ध आँखें फाड़-फाड़कर उस अनुपम रूप को देखने लगा। उस जीवित रूप-रानी की तुलना में सब तुच्छ थे। उसका शिल्पी हृदय उस सुन्दरी को अमर बनाने के लिये मचल उठा। परिस्थिति को भूल कर उसने केमरा उठाया।

“केशर कुमारी, तुम कहाँ हो? हम सब तुम्हें ढूँढ़ती फिर रही हैं?”—मूलवचन परिच्छद धारी कई स्त्रियों ने आकर उस तरुणी को घेर लिया। उधर शिल्पी के केमरा में उस परी रानी का चित्र उठ गया।

पानी से निकलते निकलते केशर कुमारी की दृष्टि उस ओर पड़ गई—“बहन, देखो, देखो!”

“अरे असभ्य क्या कर रहा है?”

शिल्पी ने अपने स्वप्नातुर नेत्र उठाये—“फोटो उतार लिया है ।” शिल्पी बोला ।

सबकी सब अवाक् रहीं ।

“कैसा ढीठ है बहिन !”

“नहीं, सरल ।”—केशर कुमारी ने धीरे से कहा ।

“इन्हें जानता है ?”

“नहीं”

“फिर किसकी आज्ञा से तूने चित्र उतार लिया ?”

“जी चाहा ।”

सब खिलखिला पड़ीं ।

“असभ्य ।” सखी बोली ।

“नहीं, चोर”—दूसरी ने आवाज लगाई ।

चोर ! तो वह चोर है ? शिल्पी अवाक् विस्मय से उन्हें देखने लगा ।

(२)

सुबाहु ने आदर से दिनकर की पीठ ठोंक कर पूछा—
“बाहर से लौट कर गम्भीर क्यों हो गये मित्र ?”

“मैं ?”

उसकी चौक राजा से छिपी न रही ।

“और चिन्ताशील भी ?”

दिनकर मुरझा सा गया ।

“और कपटी भी ?”

दिनकर चुप रहा ।

“कपटी इसलिये कि बाहर से लाये नूतन और कदाचित् श्रेष्ठ सौन्दर्य को अपने राजा से छिपाना चाहते हो ।”

इस बार शिल्पी, बोला धीरे-धीरे मानो अपने को भूल कर—“नहीं । उसके जीवन में यह प्रथम मूठ था ।

सुबाहु जोर से हँसे—“इस शिशु हृदय को लेकर दुनिया में क्यों आये थे, शिल्पी ? परिहास समझने की शक्ति भी नहीं है ? किन्तु आजकल ऐसे विकल क्यों हो रहे हो दिनकर ?”

“सुस्त पड़ा रहता हूँ ।”— यह था द्वितीय असत्य । वह कैसे कहता कि केशव कुमारी के उस क्षुद्र चित्र को सामने रखे वह घंटों बैठा मूर्ति बनाया करता है, और जरा-सी भूल पर सिर पीटता फिर घंटों तक चित्र के सामने उस मूर्ति की नयन दृष्टि में वैसी ही विह्वलता लाने के लिये व्याकुल हो उठता है । —नहीं, वह उसे जगत के सामने नहीं ला सकता ।

मूर्ति बनाने के पहिले उसकी अभिरुचि ऐसी नहीं थी । सोचे हुए था—मूर्ति शेष कर वह अपने राजा को पृथ्वी के श्रेष्ठ सौन्दर्य

की भेंट करेगा; परन्तु न जाने कब, क्यों और कैसे मूर्ति जैसे-जैसे सम्पूर्ण होने की ओर बढ़ने लगी, उसका अभिप्राय भी वैसे ही वैसे बदलने लगा । दिन पर दिन वह उस मूर्ति में ऐसा आकृष्ट होने लगा कि खाना पीना तक भूल गया ।

एक दिन वह अपनी जिन मूर्तियों को देखकर स्वयं मुग्ध हो जाता, अपनी सफलता पर फूला न समाता और जिन चित्रों को देखकर दर्शक आत्म-विस्मृत होकर चित्र लिखे से रह जाते, अपनी उन्हीं कृतियों को देखकर वह विराग से मुँह फेर लेता । अपने आप हँसता, कहता अन्धा था अन्धा, वरना इतनी बड़ी भूल दिखी क्यों नहीं ? उनमें जीवन ही कहाँ ? नहीं, उस सजीव मूर्ति को वह किसी को न दे सकेगा—अपने राजा को भी नहीं ।

राजा व्यस्त हुए—“कहा क्यों नहीं ? राजवैद्य को अभी बुलवाता हूँ ।”

नहीं महाराज क्या प्रयोजन ?

“अच्छे कैसे होंगे ?”

वह सचेत हुआ—“मैं बीमार तो हूँ नहीं, बाहर की जलवायु से यों ही कुछ सुस्ती सी रहती है, दो दिन में सब ठीक हो जायगा ।”

किन्तु दिखलाने में हानि ही क्या है ?”

वह हँसा “स्वस्थ शरीर को अस्वस्थ बनाना वैद्यों का नियम है । यदि उन्होंने किसी बड़े रोग का नाम बतला दिया तो आपकी शादी को मिठाइयाँ यों ही जावेगी ।”

राजा जोर से हँसे—“झूठ नहीं कहते किन्तु मित्र देवी का और मेरा चित्र सर्वाङ्ग सुन्दर होना चाहिए । तुम्हारी उस उत्कृष्ट कला को, सुघर सृष्टि को देखकर जगत् अवाक रह जाय । समझे ? यह तुम्हारी शेष और श्रेष्ठ परीक्षा है ।”

म्लान स्तिम्भित नेत्रों से शिल्पी सिर झुकाकर बैठा । वह तो अपना सब कुछ उस मूर्ति के पैरों तले लुटा चुका था, अब अवशिष्ट कुछ भी नहीं था— तो वह उस रिक्त, सर्वशान्त अशक्त हृदय, मन और हाथों से दुनियाँ को कैसे सन्तुष्ट करेगा ?

चित्रा नदी के सामने एक सुन्दर, मकान की बन्द कोठरीमें ध्यानमग्न दिनकर मूर्ति के सामने बैठा था उसकी मूर्ति शेष हो चुकी थी । मकान के दूसरे कमरों, ढालानों में सुन्दर मूर्तियाँ और चित्र रखे थे ।

मकान दिनकर का था ।

वह बैठा था—जैसा कि वह बैठा रहा करता था— भूख-प्यास और राजाज्ञा को भूल कर ।

उसकी विशाल दुनिया अब संकुचित हो चुकी थी, सृष्टि की तूलिका सीमित हो गई थी— केशरकुमारी की मूर्ति के अणु-परमाणु में उसकी अन्तर की शक्ति बन्द हो चुकी थी—उन्हीं मदभरे, भोले नयनों में । उसकी दुनिया बही थी; सुख, शान्ति आनन्द और आराम भी । वह उसी में तुष्ट था, इससे अधिक उसे जरूरत नहीं । वह था भक्त और वह था उसकी देवी । पूजा, भक्ति, नीरव अर्घ्य, नित नये रूप में वह उसे दिया

करता था। बस, वही था उसका वास्तविक जीवन, पुजारी पूजा करके तृप्त था, वरदान की आशा नहीं रखता था और न प्रतिदान की ही।

एक दिन वह था, जब कि शिल्पी जगत् से परिचित होना चाहता था, परन्तु उसके लिए यह भी एक दिन आ गया, जब वह उसी जगत् से अपने को छिपाना चाहता था, किन्तु विश्व उसे छोड़ना नहीं चाहता था।

मूर्ति की गंगाभ-प्रदीप सी आँखों में गड़ाकर कभी वह सोचता क्या देवी को लेकर कहीं भाग जाऊँ? जंगल में एक कुटिया बना लूँ, जहाँ उसके और मेरे सिवा कोई तोसरा न रहे, जहाँ उत्सव की बाँसुरी कभी नीरव न हो चन्दन शाखाओं पर का मोर कभी केका को न भूले, श्यामल मिट्टी के आँचल के फूल कभी मुरझा न जाँय, जहाँ चाँद का टुकड़ा नित्य अपने दीवट को जगाया करे और उसी उजेले में बैठकर हम दोनों जासून के रंग से फाग खेला करें, चम्पा की कलियों से माला गूँथा करें, सर्पमणियों से मुकुट बनाया करें, आम की पत्तियों पर सोया करें।

कभी सोचता— क्या मैं उसे लेकर पाताल पुरी में चला जाऊँ जहाँ शेषनाग के सहस्रों फनों में हीरक-दीवट जला करते हैं, कुँड से अमृत बहा करता है और नाग-कन्या की चोटी में माणिक मूला करता है? क्या उसी विरामहीन आनन्द में अपनी देवी को लेकर भाग जाऊँ।

कभी सोचता— समुद्र के अताल ही में क्यों न छिप रहूँ? वहाँ की विराट् स्तब्धता केवल उसे और मुझे घेरे रहेगी,

एक भींगुर भी न बोलेगा न एक हलका-सा पवन । रहेगी मात्र वह और मैं, एक दूसरे में सीमित होकर ।

एक दो करके मास और वर्ष बीतने लगे ।

अर्धरात्रि की निस्तब्धता में दिनकर मूर्ति के सामने बैठा था । उसके हृदय में महाप्रलय-सा मचा था । आँसुओं से वह अन्धा हो रहा था । वेदनातुर स्वर में वह धीरे-धीरे बड़ बड़ा रहा था—“अरी गूँगी ? बोल, एक बार भी तो बोल । इस तरह मैं कैसे जीऊँगा ? मेरी बहरी देवी, पुजारी की जीवनव्यापी कठोर तपस्या को कभी तो मुँह उठाकर देख । इतने दिनों की तन्द्राहीन रातों के काटने का कुछ पुरस्कार तो दे । गूँगी बहरी कब तक बनी रहेगी ? ऐसी कठोर, ऐसी निर्दय ? हृदय का अस्तित्व क्या तुममें है नहीं ? मेरी देवी ! बोल, एक बार मुझे पुकार, केवल एक बार मीठे स्वर में, बहुत ही धीरे, छोटे शब्द में जी खोलकर पुकार तो ले ! नहीं, इस तरह मेरी आत्मा संतुष्ट नहीं हो सकती ।

—हाँ, तो शिल्पशास्त्री के जगत् में उस दिन का अन्त हो चुका था । जिस दिन की उसकी काम्य थी केवल निर्जनता और आराध्य थी यह मूक मूर्ति ।

उस दिन वह केवल निर्वाक मूर्ति ही में तुष्ट था । किन्तु उस दिन, ऐसे एक दिन के आने की उस भोले सरल शिल्पी को भला क्या खबर थी ।

वह बावला-सा चिल्ला उठा—“मैं चाहता हूँ प्रतिदान, माँगता हूँ वरदान, सुनती हो, शब्दमय वाणी ?”

(४)

राजा सुबाहु की सभा भरी थी। यथा-स्थान सभासद बैठे थे। राजा के मुँह पर अन्धकार था और दिनकर सिर नीचा किये बैठा था। राजा और रानी का बड़ा सा चित्र सामने रखा था।

“यह चित्र है या खिलवाड़ ? एक अनाड़ी भी इससे अच्छा चित्र बना सकता है। इस अवहेलना का कौन सा दण्ड लेना चाहते हो, दिनकर ?”

“जैसी अभिरुचि”—सब कुछ खोया सा दिनकर बोल उठा।

कुछ देर उसे देखकर सुबाहु ने कहा—“मुझे आश्चर्य है, दिनकर, वह कौन-सी ऐसी वस्तु है जिसने जगत् के श्रेष्ठ शिल्पी को अधःपतन की शेष सीमा में उतार दिया ? मुझे खेद है, शिल्पी तुम्हारी आत्मा की इस पराजय से। क्या एकान्त में तुम मुझे इसका कारण बता सकते हो।

“नहीं”

“इसे अवहेलना समझूँ या अधःपतन ?”

“महाराज स्वयं बुद्धिमान हैं”—दिनकर ने हाथ जोड़कर कहा।

व्यथा से राजा ने मुँह फेर लिया—“जाओ महीने भर विश्राम के बाद आना।”

दिनकर चला गया।

राजा के मित्र, जो दूर देश से आये थे, उन्होंने कहा—“क्या मैं शिल्पशास्त्री की चित्रशाला देख सकता हूँ ?”

“बाधा ही क्या हैं ?” सुबाहु ने उत्तर दिया ।

“मुझे तो उतना नहीं, किन्तु ‘उसे’ शिल्प से बड़ा प्रेम है ।”

“ऐसा ? कल चलिये देवी को साथ लेकर ।”

सभा भंग हुई । राजा मित्र सहित अन्तःपूर में चले गये ।

मूर्ति के सामने बैठा शिल्पी वैसे ही पुकार रहा था—“मेरो गूँगी देवी, एक बार बोल, तेरा पुजारी वरदान की भीख माँग रहा है ।”

ध्यान मग्न दिनकर को उन तीन व्यक्तियों के अस्तित्व का पता तक न चला जो उसके पीछे खड़े थे ।

राजा सुबाहु के नेत्र घृणा और क्रोध से प्रदीप्त हो उठे । मित्र आश्चर्य से निर्वाक्र रहा—और केशर कुमारी के नेत्र व्यथा से स्तिम्भित से हुए । उसकी आँखों के सामने न तो शिल्पी था न मूर्ति थी, केवल प्रशस्त गंगा के तट पर एक भोला-सा मनुष्य, और जल के भीतर भोलो-सी लड़की, सखियों की मोठी हँसी । “चोर”—अचानक उसके कंठ से निकल पड़ा—“चोर” । दिनकर ने एक बार घूमकर देखा उस स्वर से वह परिचित था !

बोली, इतने दिनों के बाद उसकी आराध्य देवी जयमाला हाथ में लिये वरदान देने को अपने पुजारी के द्वार पर खड़ी थी, किन्तु शिल्पी का हृदय उस पुकार का उत्तर न दे सका । उस देवी का पति अभिशाप की तरह वरदान की माला में उज्ज्वल हो उठा । उसने आँखें फेर ली । नहीं, वह उस पति की

पत्नी से परिचित नहीं था । वह तो, उस कुमारी का पुजारी था जिसकी मूर्ति उसके सामने थी ।

कारागार का द्वार धीरे से खुल गया । स्त्री कंठ की धीमी पुकार से दिनकर विस्मित - सा उठ बैठा ।

“तुम कौन हो ?”—उसने कठोर स्वर से पूछा ।

“केशरकुमारी की सखी लीला ।”

“इतनी रात बीते पुरुष के पास किस उद्देश्य से आयी हो !”

‘रानी का सन्देश कहने ।’

“जाओ देवी, मैं उनका कुछ भी सन्देश नहीं सुन सकता ।

“अभी तो उनका चित्र चुरा भागे थे, और उसकी मूर्ति की प्रतिष्ठा कर दिन रात उस बेचारी को आर्कषण किया करते हो !”

शिल्पी भौंचक्का - सा रह गया ।

“किन्तु मैंने कुमारी का चित्र चुराया था और उन्हीं का ध्यान किया करता हूँ ?”—देर के बाद वह बोला ।

“ध्यान नहीं, आकर्षण कहो ।”

“आकर्षण !और मैंने ?”

“हाँ, एक निर्दोष को इस तरह आकर्षण कर अब कहते हो—‘सन्देश नहीं सुन सकते ।, तुम्हें सज्जा नहीं, तुम मर्द हो ?’”

“किन्तु मैं कुमारी जी को पूजा.....।”

“फिर वही बात।”

किन्तु कुमारी...।”

इस बार वह खिलखिला पड़ी—“तो रानी केशरकुमारी कुआँरी नहीं तो क्या हैं ? मैं तुमसे ज्यादा बात नहीं कर सकती । तुम वरदान की भीख माँग रहे थे, लो, देवी ने अपने हाथ की अँगूठी भेजी है । अपनी अँगूठी दे दो । बस, अब मैं जाती हूँ, अपना काम कर चुकी । अब तुम्हें जैसा दिखे वैसा करो ।”

लीला चली गई ।

और शिल्पी ? वह देवी के प्रथम और श्रेष्ठ दान को लेकर अपने उस मृत्यु-मंदिर में चुपका बैठा रहा, कौन जाने उसकी आत्मा दुखी थी या सुखी !



गोरा

[चन्द्रगुप्त विद्यालंकार]

(१)

कह नहीं सकते कि सुखी जीवन की वास्तविक पहिचान क्या है, फिर भी इतना निश्चित है कि जीवन एक सुखी किसान था। आर्थिक दृष्टि से वह बिलकुल दरिद्र था। गाँव की हद जहाँ जंगल से मिलती थी, उस स्थान को २०—२५ बीघा मामूली ढंग की जमीन पर उसका मौरूसी हक था। उसके परिवार में पत्नी के अतिरिक्त २—३ बच्चे भी थे। घर-गिरस्ती के लिये आवश्यक सामान का उसके पास अभाव नहीं था। मुरब्बा और परौंटे न सही नमकीन सत्तू ही सही—यह परिवार जिस किसी तरह दोनों जून अपने पेट के गढ़ों को भर अवश्य लेता था ! पती-पत्नी में खूब निभती थी। दोनों ही शरीर से स्वस्थ और स्वभाव के मीठे थे। जीवन मेहनती आदमी था। उसे काम करने का शौक था—मानो वह इसके लिये बहाने ढूँढता हो। रबी की फसल कट चुकने के बाद भी उसे किसी ने सुस्ताते नहीं देखा। उन दिनों के लिये वह पहिले-ही-से अपनी जमीन के ५-७ कम उपजाऊ बीघों को घेर-घारकर तय्यार कर रखता था। यहाँ खरबूजे बोये जाते थे। जीवन परिवार के ये दिन बड़े मजे में कटते थे। खरबूजों के खेत में जामुन की घनी छाया के नीचे फूँस की एक जरा सी

भोपड़ी; यह जीवन के खरबूजों का स्टोर-हाऊस था और यही उसके परिवार का आश्रय-स्थान। वैशाख मास के गर्म दिनों की दोपहर जामुन के इसी पेड़ की छाया में कटा करती थी। साँझ के बाद, दिन भर बिकने से बचे हुए खरबूजों के साथ गेहूँ की रोटी खाकर ये लोग ईश्वर को दुआएँ दिया करते थे। उन्हें न धनियों से द्वेष था और न जमींदारों से ईर्ष्या।

वैशाख मास की किसी चाँदनी रात को पास ही से एक हलकी-सी आवाज सुनकर जावन की नींद उचट गई। करीब आधी रात बीत गई थी। जावन को भय हुआ कि कहीं बाढ़ फाँदकर गीदड़ तो खेत में नहीं घुस आये, परन्तु एक बार चाँदनी में अपने छोटे से खेत को भली प्रकार देख लेने पर उसका यह सन्देह दूर हो गया। इसी समय उसे फिर से यही आवाज सुनाई दी। यह आवाज सुनकर जावन पहिचान गया कि खेत के पास वाले जंगल में, कोई जंगली जीव किसी गाय के बछड़े पर आक्रमण कर रहा है। अपने खेत में किसी प्रकार के उपद्रव न देखकर पहिले तो जावन की इच्छा हुई कि न जाऊँ—क्यों मुफ्त में एक बछड़े के लिये अपनी जान खतरे में डालूँ; परन्तु बार बार 'बाँ' 'बाँ' की करुण चिल्लाहट सुनकर वह रह न सका। जावन खाट से उतर कर खड़ा हो गया। एक हाथ में मजबूत डंडा और दूसरे हाथ में टूटी हुई चिमनी वाला, बरसों का पुराना हरिकेन लैम्प लेकर वह उसी ओर चल दिया जिस ओर से कि आवाज आ रही थी।

खेत की हद्द से मिलकर जो जंगल मीलों तक फैला हुआ था, उसका प्रान्त भाग बहुत घना नहीं था। साधारण भाड़ियों

और ढाक के पेड़ों के अतिरिक्त कोई बड़ा वृक्ष वहाँ नहीं था। जंगल में प्रविष्ट होकर, एक बड़े कुंड की ओट में उसने देखा कि एक छोटे से बछड़े पर ४—५ गीदड़ आक्रमण कर रहे हैं और वह बेचारा जमीन पर लेटा हुआ बड़े करुण स्वर में 'बौँ' 'बौँ' कर रहा है। एक लैम्प-हस्त आदमी को अपनी तरफ आता हुआ देखकर सब गीदड़ भाग खड़े हुए।

जीवन ने पास जाकर देखा कि बछड़े को बहुत अधिक चोट नहीं आई है। सिर्फ उसकी अगली दाँई टाँग और पोठ का कुछ भाग ही जख्मी हुआ है। जीवन ने अनुमान से पहिचाना कि उसकी आयु दो मास से अधिक प्रतीत नहीं होती। बछड़े का रंग बिलकुल श्वेत था और उसके माथे पर लाल शंख का निशान बना हुआ था। जीवन बछड़े को धीरे से गोद में उठाकर अपनी भोपड़ी में चला गया।

प्रातःकाल उठकर जीवन ने जाँच करके देखा कि बछड़े की जात बहुत अच्छी है। अगर कुछ यत्न किया जाय तो वह एक बहुत बढ़िया बैल बन सकता है। जीवन की घरवाली अभी सोई ही हुई थी कि जीवन ने इस बछड़े को उसकी चारपाई पर डाल दिया वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। इस प्रकार अकस्मात् निद्रा भंग हो जाने के कारण भी अभी तक वह पूरी तरह से नहीं समझ पाई थी कि उसने सुना; जीवन कह रहा था—“परमेश्वर ने पालने के लिये तुम्हें एक और बच्चा दिया है।”

पति-पत्नी दोनों ने सम्मिलित रूप से खूब सोच-विचारकर इस मनुष्येतर जाति के बालक का नाम रक्खा—‘गोरा’

जीवन की किस्मत अच्छी थी। उसके प्रयत्न से गोरा के दोनों घाव शीघ्र ही भर गये। अच्छा होकर वह खूब कूदने फाँदने लगा। कुछ ही महीनों में गोरा का डील-डौल खूब भर आया। उसके कंधे उन्नत और पट्टे मजबूत हो गये।

(२)

देखते ही देखते 'गोरा' एक बड़ा डील-डौल वाला बैल बन गया। उसके मुकाबिले का बैल आस-पास के अनेक गाँवों में मिलना कठिन था। उसकी चाल हाथी की चाल के समान मस्तानी थी और उसकी गरज बादल की गरज के समान गम्भीर। लोग उसे अब विस्मय के साथ देखते और जीवन के भाग्यों की सराहना करते थे।

जीवन को गोरा पर अपने बच्चों के समान प्रेम था। प्रतिदिन दोनों समय मेहनत कर वह उसके लिये कुट्टी तय्यार किया करता था। यथाशक्ति वह उसे कभी कभी तेल और घी भी पिलाया करता था। जीवन की घरवाली को तो गोरा से एक तरह का मोह हो गया था। वह उसे हर समय आँखों के सामने रखना चाहती थी। उसके छोटे बच्चे उस विशाल-काय बैल की चौड़ी छाती के नीचे खड़े होकर उसके गले की नरम और सुन्दर सास्ना को अपने चंचल हाथों से इधर उधर हिलाया करते थे। गोरा आँखें बन्द करके बच्चों के इस अबोध-प्यार का मजा लिया करता था। गोरा के डील-डौल का दूसरा बैल जीवन के पास तो क्या, गाँव-भर में नहीं था, इस कारण जीवन उसे हल में नहीं जोत सकता था। यही दलील देकर बहुत से लोगों ने एक हजार रुपयों तक दाम लगाकर गोरा

को जीवन से खरीदना चाहा, परन्तु जीवन को यह मंजूर नहीं था। वह कहता था, कभी धन के लालच में कोई अपनी सन्तान को भी बेचता है? जीवन के पास एक मामूली-सी बैलगाड़ी थी, वह गोरा को इसी में जोता करता था।

जीवन के गाँव के नजदीक ही एक बहुत बड़ा सरकारी मैदान था। लोगों में मशहूर था कि मुगलमानों हुकूमत के दिनों में गह चलती हुई फौजें इसी मैदान में पड़ाव किया करती थीं। आजकल यह मैदान एक ग्रामाण प्रदर्शनी के काम में लाया जाता था। यहाँ शब्द-श्रुति में सरकार की ओर से पशुओं की एक बड़ी भारी नुमाइश की जाती थी। दूर-दूर के लोग इस नुमाइश में अपने जानवरों को लाते थे। जो जानवर सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते थे, उन्हें सरकार की ओर से इनाम भी दिया जाता था।

गाँव के जमींदार का नाम था लखपतराय। वह बेपरवाह, आलसी और शौकीन आदमी था। गाँव के काम-काज में अधिक दखल देना उसे पसन्द नहीं था। यही कारण था कि उस गाँव के किसानों को वर्ष के अधिकांश भाग में अपने जमींदार से कोई विशेष शिकायत नहीं रहती थी। परन्तु जिन दिनों जमींदार को दावत, शिकार या सग्वारी अफसरों की खातिरदारी करने की खप्त सवार होती थी, उन दिनों गाँव वालों की आफत आ जाती थी। नुमाइश के महीने में जब जिले के कुछ मोटे अफसर इन्तजाम का काम करने के लिये इस गाँव में आते थे, उन दिनों उनकी खातिर करते करते किसानों की जान निकलने लगती थी।

प्रदर्शिनी की प्रतिस्पर्धा में भाग लेने का जमींदार को खास शौक था। उसने कुछ बैल और घोड़े महज इसी काम के लिये पाल रखे थे जमींदार के जानवर थे, खाने पीने की क्या कमी ? खासकर नुमाइश के दिनों में एक-एक जानवर के पीछे चार चार किसान दिन-रात भागे फिरते थे। नुमाइश का सबसे पहला इनाम कई बरसों से लखपतराय को उसके एक बैल के लिये मिल रहा था। इस वर्ष भी जमींदार को यह विश्वास था कि प्रदर्शिनी का प्रथम पुरस्कार उसी के हाथ में रहेगा।

इधर लोगों को यकीन था कि जमींदार के बैल का गोरा से कोई मुकाबिला ही नहीं है। यदि दोनों बैलों को भिड़ा दिया जाय तो गोरा एक ही बार में जमींदार के बैल को दूर पटक दे। इस कारण लोग जीवन पर इस बार की प्रदर्शिनी में सम्मिलित होने के लिये जोर डाल रहे थे, मगर वह इन्कार करता था। मगर यार लोग भी कब मानने वाले थे ? खास कर जो लोग प्रतिवर्ष जमींदार से नीचा देखते थे, वे भला इस सुवर्ण अवसर को किस तरह हाथ से जाने देते ? आखिर लोगों ने इस वर्ष की प्रदर्शिनी में सम्मिलित होने के लिये जीवन को तैयार कर ही लिया।

नतीजा यह हुआ कि इस वर्ष नुमाइश का प्रथम पुरस्कार जमींदार को नहीं मिल सका, गोरा ही इस इनाम का अधिकारी समझा गया।

(३)

जीवन अपनी गाड़ी को घर की तरफ दौड़ाये लिये जा रहा था। गोरा के लिये यह खाली गाड़ी फूल के समान हल्की थी।

गोरा ने कल ही नुमाइश में नामवरी हासिल की थी, इसलिये जीवन ने उसे आज यथेष्ट धी पिलाया था। गोरा के गले में उसने फूलों की एक माला डाल रखी थी। पशु होते हुए भी गोरा यह समझ गया था कि आज उसका मालिक उससे विशेष प्रसन्न है। इस कारण वह मस्तानो चाल से गाड़ी को उड़ाये चला जा रहा था। गाड़ी में बैठा हुआ जीवन, अपने ऊबड़-खाबड़ स्वर में कोई ग्रामीण गीत गा रहा था।

अपने घर के सामने पहुँचते ही जीवन का हृदय किसी निकट अनिष्ट की आशंका के भय से काँप उठा। उसके घर के द्वार पर जमींदार का कारिन्दा खड़ा हुआ था। जीवन का उन्मुक्त संगीत सहसा रुक गया। अज्ञान पशु ने भी मानों अपने मालिक के मन का भाव भाँप लिया—उसकी चाल धीमी पड़ गई।

इसी समय कारिन्दे ने आगे बढ़कर आदेश दिया—“जीवन चलो तुम्हें जमींदार ने याद किया है।”

“भाई साहब, राम राम” कहकर जीवन ने बड़ी नर्म आवाज से पूछा—“कुछ मालूम है कि मुझे मालिक ने क्यों बुलाया है?”

कारिन्दे ने लापरवाही से जवाब दिया—“नहीं, मुझे क्या मालूम?”

जीवन जमींदार के सामने पहुँचा। जमींदार लखपतराय अपने मकान के सामने धीरे-धीरे टहल रहा था। जीवन ने वहाँ पहुँचकर उसे झुक कर बन्दगी की।

लखपतराय ने मुस्किरा कर कहा—“जीवन, नुमाइश की जीत के लिये बधाई !”

जीवन का हृदय काँप गया। यह ताना है या बधाई। उसने धोमे से सिर्फ इतना ही कहा—“यह हजूर की मेहरबानी है।”

अब जमींदार ने खूब गम्भीर होकर कहा—‘जीवन’ मैं सचमुच तुम्हारे बैल से बड़ा प्रसन्न हूँ। मैं उसे तुमसे खरीद लेना चाहता हूँ मुझे मालूम हुआ कि वह बैल तुम्हारे यहाँ बिल्कुल निठल्ला रहता है, इसलिये मुझे उम्मीद है कि उसे बेंचने में तुम आनाकानी न करोगे।”

जीवन काँप गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

जमींदार ने कहा—“बोलो, चुप क्यों हो ?”

जीवन धीरे से बोला—“हजूर आपके पास जानवरों की क्या कमी है। उस बैल को मैं बेंचना नहीं चाहता।”

“तुम्हें उसके बदले मुँह माँगा दाम मिलेगा।”

“मैं उसे किसी भी दाम पर बेचना नहीं चाहता। हजूर, मैं खुद भी तो आप ही की जायदाद हूँ।”

जमींदार ने अब प्रलोभन देने का प्रयत्न किया—“तुम्हारा लगान माफ कर दूँगा।”

जीवन ने नकारात्मक उत्तर दिया।

जमींदार इस पर भी निराश नहीं हुआ। अब उसने अपने ब्रह्मास्त्र का वार किया—“तुम्हें यह बैल मुझे बेंच देना होगा।”

जीवन चुप रहा ।

जमींदार ने फिर कहा—“सीधी तरह से नहीं दोगे, तो फिर किसी और उपाय से दोगे ?”

जीवन को भी कुछ आवेश आ गया । उसने काँपती हुई आवाज में कहा—“हरगिज नहीं ।”

जमींदार ने कहा—“अच्छा जाओ ।”

उस दिन के बाद से अभागे जीवन पर जमींदार ने सख्ती करना शुरू किया । उससे कठिन बेगार ली जाने लगी ! बेगार ऐसी ली जाती थी कि गोरा को दिन-रात काम में लगा रहना पड़े कभी-कभी अकेले गोरा को ही बेगार में मँग लिया जाता था । जीवन के दरिद्र परिवार पर यह एक नई आफत आ खड़ी हुई । परन्तु फिर भी जीवन ने पराजय स्वीकार नहीं की । अपनी किस्मत के भरोसे जीवन यह सब अत्याचार सहने लगा ।

(४)

जंगल से लकड़ियाँ काट कर गाँव की तरफ लौटते हुये जीवन काँप उठा । आस्मान अचानक काले काले बादलों से घिर आया था । जीवन को जिस बात का भय था, आखिर वही हुई । इस चौमासे के दिनों में गाँव से तीन-चार मील दूर एक बरसाती नाला पार करके लकड़ियाँ काटने जाना सचमुच एक बड़े जोखिम का काम था । बरसात के कारण नाले का कोई विश्वास नहीं था, वह जाने कब भर कर बहने लगे । आज प्रातः काल लखपतराय ने जीवन को इसी जंगल से बेगार में लकड़ियाँ

काट लाने का आदेश दिया था। जीवन जब घर से चला था तब आस्मान साफ था, और नाले में भी बहुत कम पानी था। परन्तु साँझ के समय ज्यों ही गड्ढे में लकड़ियाँ भर कर वह लौटने को तैयार हुआ, त्यों ही इन्द्र देवता की सेना ने एक साथ आकाश-मंडल पर चढ़ाई कर दी।

जीवन ने रास हिलाकर गोरे को भागने का आदेश दिया। बरसाती नाला इस स्थान से चार-पाँच फर्लांग ही दूर था। जीवन की इच्छा थी कि वह जिस-किसी तरह भाग कर गड्ढे सहित इस नाले के पार पहुँच जाय, उसके बाद देखा जायगा। परन्तु इस समय तक वर्षा बड़े जोर से शुरू हो गई थी नाले के रेतीले किनारे पर पहुँच कर जीवन ने बड़े दुःख के साथ देखा कि नाला खूब भरकर बह रहा है। जीवन निराश हो गया। अब कई घन्टे तक इसी पार बैठे रहने को वह बाध्य था। वर्षा की बौझार जीवन के शरीर पर खुले रूप में पड़ रही थी, इसलिए गड्ढे से उतरा। उसने गोरे को गाड़ी से खोलकर किनारे की हरी हरी घास चरने के लिये छोड़ दिया। इसके बाद गड्ढे की लकड़ियों को उसने कुछ ऐसे ढंग से रक्खा कि उसके अन्दर एक खोह सी बन गई। इस खोह के ऊपर अपनी चादर फैलाकर, वर्षा से बचने के लिये जीवन अन्दर बैठ गया।

सहसा गर्दन उठाकर गोरा एक बार बड़े जोर से गरज उठा। गोरा की यह गरज सुनकर जीवन भय से सिहर उठा। धड़कते हुए दिल से उसने अपनी खोह में से सिर बाहर निकाला। देखा, गोरा अब भी पहिले-ही की तरह निश्चिन्तता

से हरी हरी घास चर रहा है। वर्षा इस समय भी कम नहीं हुई। नाले के मटियाले पानी में वर्षा की बड़ी बड़ी बूँदें पड़कर उसे विक्षुब्ध कर रही हैं। इन बूँदों की मार से मानों वह नाला बौखला-सा उठा है। जीवन ने जङ्गल की तरफ मुड़कर देखा—चारों ओर सन्नाटे का राज्य है। केवल वर्षा पड़ने की साँय साँय आवाज इस निस्तब्धता को भँग कर रही है। जङ्गल के हरे हरे वृक्ष वर्षा में एक साथ चुपचाप स्नान कर रहे हैं। जीवन ने फिर से अपना सिर खोह में छिपा लिया। इस नोरव सन्नाटे में उसे कुछ-कुछ भय प्रतीत होने लगा।

थोड़ी देर में बादल फट गये। वर्षा बन्द हो गई। पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष निकल आया। सूर्य डूबने में अब अधिक समय नहीं रहा था। सूर्य की अन्तिम किरणों ने बादलों में अनेकों रंग पोत दिये थे। उनके प्रतिबिम्ब से बरसाती नाले का पानी भी पिघले हुए सोने की उज्ज्वल धार के समान प्रतीत हो रहा था। जङ्गल में मोर बोलने लगे। प्रकृति का सन्नाटा भंग हो गया। चारों ओर का दृश्य स्वर्गीय हो उठा। परन्तु बेगार में पकड़े गये जीवन का ध्यान इन दृश्यों की ओर नहीं था। वह बड़ी उत्कंठा से नाले का पानी कम हो जाने की प्रतीक्षा कर रहा था।

धीरे-धीरे नाले का पानी भी उतर गया। जीवन की अब जान में जान आई। गोरा को गड्ढे में जोतकर फिर से अपनी खोह में आन बैठा, और रास हिला कर गोरा को चलने की आज्ञा दी। सामने सूर्य अस्त हो रहा था।

किनारे के उस हरे मैदान से उतरकर गोरा नाले के रेतीले तट पर पहुँचा। परन्तु पानी के निकट पहुँचते ही गोरा किसी चीज को देखकर सहसा चौंक उठा। उसके पैर क्रिया शून्य हो गये। गाड़ी रुक गई।

जीवन फिर से काँप उठा। डरते डरते खोह में से उसने अपना मुँह बाहर निकाला। नाले की ओर देखते ही उसके होश गुम हो गये। उसने देखा—उत्तर की ओर गड्ढे से करीब २० गज दूर ही, एक बड़ा सा शेर खड़ा है और वह गड्ढे की ओर देखकर गुर्रा रहा है।

अगले ही क्षण शेर बड़ी जोर से गरज उठा। उसकी गरज समीपस्थित पहाड़ी के साथ टकराकर गूँज उठी। पास के जंगल में फिर से सन्नाटा छा गया।

जीवन उसी प्रकार अनिमेष नेत्रों से शेर की तरफ देखता रहा। परन्तु शेर ने अभी तक उसकी तरफ नहीं देखा था, वह गोरा के श्वेत-श्वेत और मोटे-ताजे जिस्म को देखकर गुर्रा रहा था। शेर की भयंकर गरज सुनकर गोरा काँप उठा। वह बड़े करुण स्वर में चिल्लाया—बाँ ! बाँ !!

इसी समय शेर धीरे-धीरे, बड़ी शान से कदम बढ़ाता हुआ गोरा की तरफ बढ़ा। जीवन इस समय भी खोह से गर्दन बाहर निकाले रखकर शेर की ओर देख रहा था। यदि वह अब भी चाहता तो खोह में छिपकर अपनी जान बचा सकता था।

शेर को अपनी तरफ बढ़ता हुआ देखकर वह अबोध जानवर अत्यधिक करुण-स्वर में फिर चिल्लाया—‘बाँ ! बाँ !!’

गोरा का यह करुण-स्वर सुनकर जीवन सहसा विचलित हो उठा । उसे स्मरण आया—आज से दो वर्ष पूर्व गोरा की यही करुण ‘बाँ’ ‘बाँ’ सुनकर ही मैंने उसकी गोदड़ों से रक्षा की थी, क्या आज मैं उसे शेर के मुँह से नहीं बचा सकता ?

जीवन कूदकर गोरा की पीठ पर लिपट गया । अगले ही क्षण में वह शेर एक बार फिर बड़े जोर से गरज कर गोरा पर झपटा, परन्तु उसके तेज नाखून गोरा के भरे हुए शरीर में न धँसकर जीवन की सूखी हुई पीठ में जा धँसे ।

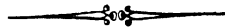
शेर ने इसी शिकार को पर्याप्त समझा । वह दरिद्र परन्तु आश्रितवत्सल जीवन की पवित्र देह को लेकर जङ्गल में प्रविष्ट हो गया ।

दूसरे दिन प्रातःकाल जीवन के रिश्तेदार उसे ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँचे । गोरा अब भी उसी तरह निश्चल भाव से खड़ा था । गड्ढे की खोह के उपर जीवन की मैली चादर अब भी उसी तरह फैली हुई थी । गोरे की पीठ पर खून के बड़े बड़े दाग और रेत पर शेर के पंजों के बड़े बड़े निशान देखकर उन्हें सारी घटना समझने में देर न लगी ।



जीवन का यह आत्म बलिदान आस-पास के सब गाँवों में प्रसिद्ध है । लोग उसका नाम बड़ी श्रद्धा से लेते हैं ।

गोरा आज भी जीवित है, परन्तु अब वह उतना मजबूत नहीं रहा । लोग कहते हैं कि स्वामी के शोक में वह प्रति दिन घुलबा चला जा रहा है । लखपतराय भी अपने व्यवहार पर शर्मिदा है । उस दिन के बाद से फिर कभी उसने गोरा के लिए आग्रह नहीं किया ।



८

शालिग्राम

[राजनाथ पारण्डेय]

(१)

शायद उसका नाम कुछ और था, पर थाना-पुलिस, हाकिम हुक्काम, अदालत-कचहरी में उनका 'शालिग्राम' नाम ही सरनाम था । वे गले में शालिग्राम की बटिया लटकाये रहा करते थे । सम्भवतः इसी से लोग उन्हें 'शालिग्राम' पुकारते थे । उनके मस्तक पर पगड़ी से सदा विमर्दित जटा और मुख-मंडल पर फूले कास की तरह सफेद दाढ़ी निरन्तर लहराती थी । वे महीने में केवल दस दिन घर पर रहते, बाकी बीस दिन कचहरी और कचहरी-यात्रा में बीतते । उस समय, जब का यह वर्णन है, वयमें वे बासठ वर्ष के थे ।

ऊँचे कद, गोरे वर्ण, प्रशस्त मस्तक, चंदन की रेखाओं, मोती-जैसे चमकते दातों, पतले-पतले ओठ और बोलने में ठनकते स्वर-सहित शब्दों के शुद्ध उच्चारण तथा बीच-बीच में संस्कृत के श्लोकों से उनकी वाणा को वह अद्भुत प्रवाह मिला था जिसके कारण उनकी बात पर सहसा किसी को अविश्वास नहीं हो सकता था । इसी से उन्हें अदालती कामों में बहुत सफलता मिली थी । जवानी में बहुत वर्षों तक उन्होंने किसी सजातीय जमींदार की नौकरी की थी और अपनी अदालती अनभिज्ञता

तथा भव्य डील-डौल से उसका ऐश्वर्य पर्याप्त बढ़ा दिया था; पर पिछले दस-पन्द्रह वर्षों से—जब से उन्होंने निजी सम्पत्ति बढ़ाने की अतिशय लोलुपता के कारण अपनी बची-खुची सात्विकता को एकदम तिलांजलि देकर अपने प्रभाव और नेक-नामी का दुरुपयोग करके लोगों को त्रास देना आरंभ किया था, तब से वे लोक की आँखों में गिर गये थे ।

पड़ोसी-पड़ोसी, भाई-भाई, चचा-भतीजा, सास-पतोहू, देवर भौजाई, और कभी-कभी पति-पत्नी तक में वे चाहते तो आसानी से कलह रोप देते । पुलिस वालों से उनकी बड़ी सगाई थी । दो आदमियों में फूट होते ही वे एक का पक्ष ग्रहण कर लेते और उसके लिये अदालत से सच का मूठ और मूठ का सच करा लिया करते । कभी-कभी अकस्मात् पहले पक्ष का साथ छोड़ दूसरे दल का साथ देने लगते और उसे आगे लड़ने में रुपये की मदद भी देते पर अन्त में उसकी सारी जमीन अपने नाम लिखा लेते । प्रायः लावारिस लोगों को अपने यहाँ आश्रय देकर उनमें बुरी से बुरी लतें डाल देते और उनकी सम्पत्ति अपने नाम कराके अदालत से उस पर कब्जा कर लेते । अक्सर गरीबों को थोड़ा रुपया देकर सादे कागज पर रसीदी टिकिट के ऊपर उनके अँगूठे का निशान ले लेते और बाद में उसमें मनमानी रकम भर कर उन पर दावा करते—उनका सब कुछ हड़प लेते ।

पिछले दो वर्षों में पास-पड़ोस के गाँवों में तीन हत्याएँ हुई पर उनमें से एक के भी अपराधियों को दंड नहीं मिल पाया । लोग निधड़क यह कह देते कि शालिग्राम ही की मदद से सब

अपराधी छूट गये । कुछ लोग तो दबी जवान से यहाँ तक कहते थे कि इन हत्याओं में उनका भी इशारा था ।

(२)

कुआर और कातिक की पुष्ट सिहरी हुई धरती ने बीच के दानों को अपने गर्भ में धारण करके जो बिरवे उगाये थे, पूस और माघ में शिशिर के शीत को पाकर वे डिढ़ाये और मतवाली फगुनहट का रस लेकर वे पोढ़ दानों से भर गये थे ! इसलिये जिन किसानों ने परिश्रम से जुताई-बोवाई करके अपनी खेती भले प्रकार सींची थी वे खेत के ढाँड़ों पर खड़ा होते ही वसन्त की समस्त श्री बटोरने वाली कोयल से भी अधिक मस्त होकर गा उठते थे । उस साल आम भी खूब बौरे थे और मधूक वृक्षों से मोती-जैसे सफेद मीठे फूल रात भर चूचूकर नीचे की सागी भूमि पाटे डाल रहे थे पर जिन अभागों के बाप-दादों के खेत-नीलाम पर चढ़े थे, वे उन खेतों के ढाँड़ों पर लोगों की आँखें बचाकर कभी जा पड़ते, तो उन्हें ऐसा लगता था मानो उनकी छाती पर साँप लोट रहा हो, और जिनके मधूक-वृक्ष अपने न रहे थे वे यदि रात में उस तरफ से निकलते तो महुए के धरती पर गिरने का टप्टप् उनके कानों में उतनी ही पीड़ा पहुँचाता जितनी पीड़ा उन वृक्षों के नीचे फिरने वाले सर्प को सिर पर उन फूलों के गिरने से होती थी ।

उस आनन्ददायक वसन्तु-ऋतु में भी मद्धू-पुर के जिन चार प्राणियों को चैन न था उनमें से एक तो बाभन थे और बाकी तीन में से एक अहीर, दूसरा केवट और तीसरा गोसाईं था । पहले ने उन तीनों में से किसी का फसल से भरा

खेत किसी के आम और महुए और किसी के खेत बारी दोनों ही अपना बनाने के उद्देश्य से अदालत में बन्ना रखे थे ।

वे बिचारे जाड़े की ठिठुरती कठिन आधीरात ही में अपने गाँव से कई कोस उबने पैर पैदल चलकर सबेरे लारी वाली सड़क पर पहुँचते और वहाँ से कचहरी जाते । दिनभर बिना खाये-पीये कचहरी में भटकने के बाद शाम को फिर लारी से वापस आते और आधी रात तक पैदल चलकर अपने-अपने घर पहुँचते । वे ऐसे दिन थे जब मुर्दों के लिये कपफन मिलना भी कठिन था, इसलिये उनके शरीर वस्त्र के नाम पर केवल कुछ चिथड़ों ही से ढके होते थे । उन्हें हर पेशी पर कम से कम तीन रुपये जुटाने ही पड़ते थे । उधर गाँव में कठिनाई से यदि कोई उनकी ओर से गवाही करने को तैयार होता भी था तो वह जाड़े की रात की ठंड से बचने के लिये तारीख के पहले ही पनही या खोल लेकर ही घर से बाहर पैर बढ़ाने का प्रस्ताव रखता था । कचहरी का हाल यह था कि अक्सर मुकदमा पेशी में पड़ जाता था । अक्सर हाकिम दो बजे के पहिले नहीं आता था जिससे अनेक मुकदमों में बिना पुकार हुए ही तारीख पड़ जाती थी । जिस दिन मुकदमा पेशी में पड़ जाता, बिचारों को तीन-तीन दिन तक बिना अन्न के रह जाना पड़ता था !

कुआर में खेतों की बोआई आरम्भ होते ही मुकदमे छिड़े थे और कार्तिक, अगहन, पूस तथा माघ भर चलते रहे । इस बीच अहीर की एकमात्र भैंस, जिसके दूध की बिक्री से उसके कुटुम्ब का पालन हो रहा था, एक बार जब

उसका मुकदमा पेशी में पड़ा था, दरवाजे पर खूंटे से बँधी बँधी गुम हो गई और उसे उसका पता तब लगा जब 'कानीहौम' के मंशी के दामाद के हाथ वह पन्द्रह रुपये पर नीलाम हो गई ! इसी बीच केवट की मँड़ई में अनायाम एक रात आग लग गई, जिससे उसके यहाँ रखा बिरादरी का टाट जल गया और अपने को छोड़ बाकी सब पाँचों के मना करने पर भी उसने लाख उपाय करके पैंतीस रुपये में नया खरीद कर उसकी जगह दूसरा नया टाट रख दिया । और, गुमाई महाराज को एकमात्र सन्तान उनकी जवान विधवा कन्या न जाने कहाँ चली गई !

जाड़े का अन्त होते-होते उनके मुकदमों का भी अन्त हो गया । शालिग्राम की उन तीनों पर डिग्री हो गई ! तब आपसी वैमनस्य छोड़कर वे अभागे इकट्ठे बैठने लगे । कभी-कभी वे इकट्ठे बैठकर बातें करते और सारी की सारी रात बीत जाती पर क्या करना चाहिये—इसका कोई निर्णय न कर पाते ।

किसी-किसी ने गोसाईं महाराज को यह कहते सुना कि जीविका जीव के संग जाती है और जीते-जी वे किसी को अपनी जीविका न लेने देंगे ! किन्तु शालिग्राम पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था । उनसे अगर कोई कभी इशारे से कुछ कहता तो वे हँसकर कहते—

जाको राखे साइयाँ, मारि सकै नहिं कोय ।

बार न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥

(३)

मद्धपुर में न जाने कितने दिनों बाद, वह एक रात जिन चार आदमियों के लिये दिल दहला देने वाली बनकर आई थी, उनमें से एक वह बाभन थे, जो दूसरे दिन अपने तीन-तीन जीते हुए मुकदमों की डिगरियाँ इजराय कराने कचहरी जाने वाले थे और बाकी तीन वही अहीर, वही केवट और वही गोसाईं थे। बाभन महाराज ने शाम होते ही भोजन करके चारपाई बिछाई और सोचा कि आधी रात तक नींद का सुख लेकर रात रहे ही उठेंगे और सबेरा होते-होते लारीवाली सड़क पर पहुँचकर पहली ही लारी से शहर पहुँच जायेंगे। उधर उन तीनों अभागों को कई रात से नींद नहीं आई थी, इसलिए उन्हें उस रात भी नींद लाने वाली शान्ति न होने से सोने की सुधि नहीं थी। वे तीनों आधी रात तक इकट्ठा बातें करते रहे, और जब चल पड़ने का निश्चय करके अपनी-अपनी खाट पर से लाठियाँ लेने गये, तो कोई बैठे ही बैठे और कोई कमर सीधी कर लेने के लिये खाट पर पैर फैलाते ही निद्राभिभूत हो गये। और, जब उनकी नींद खुली तो उन्हें प्रातःकाल के आगमन की सूचना देने वाली तेलिन चिरई की अत्यन्त शान्तिदायिनी 'ठाकुरजी ! ठाकुरजी' की रटन सुनाई पड़ रही थी ! उधर बाभन महाराज को लाख प्रयत्न करने पर भी नींद नहीं आई थी, अतः आकाश की ओर देख शुक्रतारा की स्थिति से आधी रात शेष रहने का अनुमान करके चारपाई छोड़कर चले थे।

गाँव के बाहर इकट्ठा होकर उन तीनों ने सलाह की और लगे दौड़ने। गोसाईं ने अहीर और केवट को बढ़ावा

देते हुए कहा कि अब यह रात जिन्दगी में फिर नहीं मिलेगी, जो बढ़ गया वह बढ़ जायगा !—जो पिछड़ गया वह पिछड़ जायगा !

बस्ती को बराते हुए वे खेत-बारी, वन, ताल और बाहा-खंदक को पार करते हुए कई मील दौड़ते चले गये !

उधर शालिग्राम न जाने कितने दिनों के बाद रात भर जगे थे, इससे उनके पैर जल्दी-जल्दी नहीं उठ रहे थे । जैसे उन-के एक-एक पैर में एक-एक पंसेरी बाँधी गई हो ! इसीसे जब प्रातः काल निकट था, वे पलाशों के उस वन में ही पहुँच पाये जिसके आसपास मीलों तक कोई बस्ती नहीं थी और जिसके मध्य में वही पुराना पोखर था, जो वर्ष में एक जीव जरूर लेता था, और जिसके भीटों पर खड़े आम और महुए के विशाल वृक्षों पर जनमत के अनुसार—कभी-कभी दिन ही में प्रेत खेला करते थे ! उस वृद्ध थके पथिक ने वहाँ कुछ देर रुककर विश्राम कर लेना चाहा ।

वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गया और बैठते ही उसकी पलकें ढक गईं । फिर उसने एक सपना देखा । ऐसा भयानक सपना उसने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था । उसे उस एक ही स्वप्न में एक ही ज्ञान में अतीत की—काशी, प्रयाग और अयोध्या की, भिन्न-भिन्न युगों की—बड़ी ही विचित्र घटनाएँ दिखाई पड़ी । उसने देखा कि वह किसी पुरातन युग में काशी का अहीर है और एक निर्धन ब्राह्मण के टूटे मकान पर गायें बाँध-बाँधकर उसके खँडहर तथा दो गायों पर कब्जा कर लेता है । अन्त में वह ब्राह्मण उस जमीन पर बैठकर अनशन करता है और दूसरे दिन वह उसे वहाँ से हटा देने के लिये इतने जोर से धकेल देता है कि उसके

प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। पलक मारते ही दृश्य बदलता है और इस बार उसने प्रयाग में केवट के घर जन्म लिया है। गोरखपुर के कोई ब्राह्मण जमींदार कल्पवास करने प्रयाग में संगम पर टिके हुये हैं। वह केवट रात में उन जमींदार को मलाई में जहर देकर मार डालने के बाद उनकी कुटिया में अपनी चिलम की आग डालकर उन्हें भस्म कर डालता है। फिर तीसरे पल में दृश्य अयोध्या का है, जहाँ वह गोसाईं होकर जनमा है और एक ब्राह्मण की विधवा कन्या को भगा ले जाता है जिससे उसका वृद्ध पिता सरजू में डूब कर आत्महत्या कर लेता है।

अन्तिम दृश्य को देखते ही उसका दिल धड़क गया। उसने पहचान लिया कि सरजू में डूब कर प्राण तजने वाला वह ब्राह्मण अन्य कोई नहीं, आज का उसका प्रतिवादी गोसाईं ही था और वह स्वयं अयोध्या का वह गोसाईं था जिसने ब्राह्मण की विधवा कन्या भगाई थी ! उसकी आँख खुल गई। उसने देखा कि वह ऊपर से नीचे तक पसीने में नहा उठा था। आँख खुल जाने पर भी वही स्वप्न अब भी उसके सामने नाच रहा था। अब चेतनता के कुछ स्थिर होने पर उसे स्मरण हो आया कि स्वप्न में काशी में अहीर और प्रयाग में केवट के घर जन्म लेकर पुरातन युग में वह जिन दो ब्राह्मणों की हत्या कर चुका है, वे ही आज उसके विरोधी वह अहीर और वह केवट होकर जनमे है, और अपने प्राचीनकाल के तीन तीन महाशत्रुओं को इस जीवन में इस प्रकार एकत्र हुआ सोचते ही उसके हाड़ काँप उठे !

(४)

उस पलाश वन के पास पहुँचते-पहुँचते वे तीनों साथी, जो एक साथ दौड़ते हुए चले थे मन्द पड़ गये। सूर्योदय का समय भी निकट आ रहा था। उसी समय शिवफेर गोसाईं ने, जो टोह लेने पोखर के भीट पर चढ़ गये थे, अपने साथियों को सचेत किया। पलक मारते ही उन तीनों ने उस पेड़ को घेर लिया, जिसके नीचे बैठा वह बूढ़ा अपने विगत की क्रूरताओं का सपना देख रहा था। वे तीनों उसे दाँत पीसते हुए क्रोध से घूरने लगे; पर अपने शत्रुओं को इस प्रकार सन्नद्ध देखकर भी वह वहाँ से तिरस्कार में चल देने के लिये न उठ सका, और न कुछ बोल ही सका। उसकी उस आकस्मिक तेजहीनता ने उन तीनों को क्षण भर के लिए असमंजस में डाल दिया। पर असमंजस स्थायी न बन सका। गोसाईं ने अपने साथियों को ललकारा और लाठी से पहला वार स्वयं किया। तब वह बूढ़ा भट उठ खड़ा हुआ और बोला—‘खबरदार ! पहले हम से दो बात कर लो फिर जो कुछ अच्छा लगे करना !’

“क्या बात करते हो”—गोसाईं ने कड़ककर पूछा।

“तुम चाहते क्या हो ?”

“क्या तुम समझ नहीं रहे हो ? हम लोग आज तुम्हें हलाल करने आये हैं !”

“अच्छा तो तुम्हें कसम हैं, घायल करके मत छोड़ जाना प्राण ही लेकर जाना ! पर किस तरह मारोगे मुझे ?”

“तुम्हारे ऐसे अधमों के लिए दो लाठियाँ ही काफी हैं, पर हमारे पास तो तीन हैं !”

“अच्छा तो दस मिनट का समय शालिग्राम के स्नान के लिए दे दो और जब मैं नीचे के पोखर से लौट आऊँ तो तुम मेरा प्राण ले लेना !”

गोसाईं ने स्वीकार कर लिया ।

तालाब से निकल भागने के जितने रास्ते थे उन सब पर नजर रखने के लिये वे तीनों छिटक गये और भीटों में छिपकर शालिग्राम की चौकसी करने लगे ।

शालिग्राम ने तालाब के किनारे पहुँचकर अपना कचहरी का बस्ता रख दिया । फिर गले में बँधे शालिग्राम को निकाला । फिर कमर-भर जल में चले गये । फिर हाथ में शालिग्राम को लेकर ऊपर उठाया और विलाप के स्वर में जोर-जोर से कहने लगे—‘क्या शालिग्राम ! हमने जीवन भर तुम्हारी सेवा इसी दिन के लिये की थी । बोलो न ? फिर विलपना बन्द करके यों बोले—“हाँ तब यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारी भी यही इच्छा है कि इस सूने वन में भगवान सूर्य का दर्शन मिलने के पहले ही एक लाठी ऊपर और एक लाठी नीचे और बीच में मेरी गरदन दबाकर मेरी लाश तड़पा दी जाय ?”……“क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आखिर कौन-सा ऐसा पाप मैंने किया था जो यह सब हो रहा है ?”…… तो अगर पिछले तीन जन्मों में मैंने इनको मारा था, तो” उचित तो यह था कि यह तीनों भी अलग-अलग तीन जन्मों

में मुझे मारते ।”.....“अच्छा ! यह बात है ? तब तो भगवन् यह तुम्हारी कृपा ही है जो एक ही जन्म में तुम मेरे तीन जन्मों का उद्धार किये दे रहे हो ।”

फिर स्नान करके गले में शालिग्राम को बाँध, कचहरी का बस्ता बगल में दबाये, शालिग्राम धीरे-धीरे चढ़कर ऊपर भीटे पर आये और उसी मधूक-वृक्ष के नीचे चुपचाप बैठ गये । उसी क्षण शिवफेर गोसाईं गोटेई अहीर और पलटू केवट भी सामने आ खड़े हुए । शालिग्राम ने कहा—“अब देर मत करो ! तुम्हें जो करना है, जल्दी करो ।”

इस बार शालिग्राम के स्वर में पहले-जैसी दीनता नहीं, बरन् दृढ़ता थी । उन तीनों ने सुना था कि स्नान करते समय किसी से वार्त्तालाप हो रहा था । वे विस्मय में पड़े हुए थे । गोसाईं ने कहा—“पहले तुमको यह बताना होगा कि तुम किससे बातें कर रहे थे और क्या बातें कर रहे थे ?”

“तुमसे मतलब ? तुम अपना काम करो ।” शालिग्राम ने डाँट कर कहा ।

“हम तब तक तुम्हें नहीं हतेंगे जब तक तुम यह बतला नहीं दोगे ।

“तो यह तो हम नहीं बतलायेंगे ।”

गोसाईं अपने साथियों का मुँह ताकने लगा । तब गोटेई ने आगे बढ़कर जमीन पर अपनी लाठी जमाकर रखी और

केवट के हाथ से उसकी लाठी लेकर पास ही अलग रखते हुए ललकारकर गोसाईं से कहा—खींच लाओ उस पाखंडी को इधर और जमीन पर पटककर मेरी लाठी पर उसकी गरदन रखो !” पर न गोसाईं ही आगे बढ़ा और न केवट ही । केवट ने धीरे से कहा—“गोटई ! समझ-बूझकर आग में कूदो !”

“गोटई जब आग में कूदते हैं तो समझना-बूझना दूसरों के लिये छोड़ देते हैं । तुम सबने महावीरजी के थान पर किरिया खाई थी, पर अब तुम हट रहे हो । तुम लोग भले हो हट जाओ, पर मैं शालिग्राम की लोथ मिट्टी में साने बिना नहीं जाऊँगा ।”

“नहीं गोटई ! तनिक ठहर जाओ । यह प्रेत किसीसे बात कर रहा था ! कोई सबूत तैयार कर रहा था ।” शिवफेर गोसाईं ने कहा ।

“तुम्हें यह कहते लाज नहीं आती ? गिद्ध-जैसे तुम सब भोटे पर बैठे हुए थे, फिर कोई आ गया और हमसे बात की और तुम्हारी आँखों में धूल डालकर कहीं चला भी गया ?”

“तब महाराज ! तुम बतला किससे रहे थे ?”—केवट ने पूछा ।

“और किससे बतलाएँगे भगत ? शालिग्राम को छोड़ और हमारा कौन है ?”

“तो क्या शालिग्राम तुमसे बोले थे ?”

शालिग्राम ने मौन से उत्तर दिया । आँखें बन्द करके गले में लटकाते हुए शालिग्राम को दोनों हाथों में रखकर मस्तक से लगाया !

“क्या बोले थे शालिग्राम ?”—गोसाईं ने पूछा ।

तब शालिग्राम बोले—“जब शालिग्राम से हमने रो रोकर कहा कि भगवन् ! क्या इसी दिन के लिए हमने जिन्दगी भर आपकी पूजा की थी, तब उन्होंने हमसे कहा—‘शालिग्राम ! संसार में कोई आदमी हत्या उसी की करता है जो पहले उसकी हत्या किए रहता है । पिछले तीन जन्मों में तुमने काशी, प्रयाग और अयोध्या में अहीर, केवट और गोसाईं के घर जन्म लेकर इन तीनों की—जो तब ब्राह्मण थे—हत्या की है । अब इस जन्म में यह लोग अहीर, केवट और गोसाईं होकर जनमे हैं और तुम ब्राह्मण हुए हो । इस जन्म में ये लोग तुमसे बदला लेने आये हैं हमने तुम पर यह बड़ी दया की है जो तीनों को एक ही जन्म में इकट्ठा कर दिया है । अब तुम इसी में अपनी भलाई समझो और इन तीनों को अपना प्राण हर लेने दो ।”

अहीर, केवट और गोसाईं—तीनों एक दूसरे का मुँह देखने लगे ! छन-भर बाद पलटू केवट बोला—“क्यों भाई शिवफेरे ! जब हमने किसी जन्म में इनका खून किया होगा तभी न इन्होंने पुराने जन्म में हमारा खून किया होगा ?

“ऐसा ही तो जान पड़ता है !”

“और आज जो हम लोग इनका खून करेंगे तो आगे के जन्म में हमसे बदला लेने के लिये ये फिर हमारा खून करेंगे ?”

“जरूर”—गोसाईं ने कहा ।

“तो आओ न, हम इन्हें छोड़ दें ! हम इनका खून न करें जिससे ये फिर हमारा खून न कर सकें !”

शिवफेर गोसाईं और पलटू केवट, गोटेई अहीर की ओर देखने लगे । गोटेई चुप होकर जमीन की ओर देखने लगा । तब शिवफेर गोसाईं ने कहा—“ठीक है ”

उसी समय शालिग्राम गुरु ने झट आँखें खोल दीं । काँख में दबा कचहरी का बस्ता उनके सामने फेंकते हुए बोले—“जो ऐसी बात है तो लो, तुम लोग अपनी-अपनी डिग्री निकाल लो मैं भरपाई लिखे देता हूँ ।”

गोसाईं ने झटपट बम्हा खोलकर तीनों की डिगरियाँ निकाली और शालिग्राम ने पेन्सिल से तीनों पर भरपाई लिख दी । फिर बोले—“अब जाओ, तुम लोग अपना अपना खेत काटो, अपना महुआ बीनो- और अपने पेड़ों का आम तोड़ो-खाओ । हमको तुम्हारी किसी चीज से सरोकार नहीं है ।” फिर बाकी कागजों की को ओर इशारा करके बोला —“पलटू भगत ! बीड़ी पीते हो न ? अब इस पाप की गठरी को भी दियासलाई की एक काँड़ी देकर भस्म कर डालो । मैं अब कभी कचहरी का मुँह नहीं देखना चाहता”

पलटू ने कागजों के बस्ते में आग लगा दी ।

अपने तीनों पड़ोसियों के साथ जाकर शालिग्राम ने पुनः उस पुष्कर में स्नान किया, और वे चारों अपने तन और मन की मैल धोकर बाहर आये। फिर उन्होंने उस मधूक-वृक्ष के नीचे रात-भर गिरे उसके मधुर फूलों में से दो-दो चार-चार लेकर खाया और कुँएँ पर जाकर पानी पिया। फिर आगे-आगे शालिग्रामजी और पीछे-पीछे उनके तीनों पड़ोसी धीरे-धीरे अपने ग्राम को इस प्रकार लौट गये जिस प्रकार दिन भर बढ़ी हुई नदी का वेग कम होने पर चारों ओर फैला पानी रात में धीरे-धीरे नदी के गर्भ में लौट जाता है !



मशीन का खेल

[अमृतराय]

आज ही अमोलकचन्द ने एक मशीन खरीदी है। सवाल अब उसको बिठाने का है। पहिले तो सलाह थी कि दरियाबाद या कठघर में छोटासा मकान लेकर मशीन बिठा दी जाय, पर अंत में अमोलकचन्द ने सिविल लाइन वाली अपनी दूकान में ही उसके लिये जगह पैदा की। उतनी छोटी सी मशीन के लिए जगह पैदा करना वैसा कुछ मुश्किल भी नहीं था। दूकान में आलमारियों के पीछे यों ही काफी जगह थी, और जब आलमारियाँ थोड़ी और आगे खिसका दी गयीं तो तमाम जगह ही जगह निकल आयी। गनेश का सुभाव बहुत अच्छा था। जो काम दुनिया की निगाह बचाकर करना चाहते हो उमे निधड़क दुनिया की निगाह के सामने करो—बस जरा सी आड़ कर लो। और उस तरह की आड़ तो यहाँ इस दूकान में पहले ही से मौजूद थी !

बहुत दिनों से इस चीज की जरूरत महसूस की जा रही थी मगर कोई हिम्मत का धनी आदमी दस हजार रुपया लगानेवाला न मिलता था। वह तो अमोलकचंद भी काबू में न आते मगर जब उनको यह समझाया गया कि इसमें आसमान से चाँदी बरसेगी, आप देखते तो जाइए, बटोर कर रखना

मुश्किल हो जायेगा, तो, अमोलक चंद के मुँह में पानी आ गया। काम बहुत अच्छा नहीं था इसलिये उस रास्ते पर कदम बढ़ाने में डर मालूम होता था, सिर्फ पुलिस का ही डर नहीं उस सबसे बड़े पुलिस का भी जिसका दफ्तर आसमान में है। धर्मभीरु आदमी की सदा यही दुर्गत होती है। उस रात अमोलक चंद की आँख एक मिनिट के लिए नहीं लगी। वह सवेरे उठे तो आँखें लाल थीं और चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। बीबी ने पूछा, “रात नींद नहीं आई?”

अमोलक चंद ने कहा, “नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं, सोया तो ठीक ही मगर लगता है आँख में जैसे कुछ पड़ गया है, जल-सी रही है।”

अमोलक चंद के दिल में यह भी आया कि सब बात साफ-साफ निर्मला से कह दें, लेकिन कह नहीं सके। यह ठीक है कि वह अपनी स्त्री को बहुत प्यार करते हैं लेकिन ऐसे विषय में वह ठीक राय दे सकेगी, इसका उन्हें विश्वास न था। उसकी राय शायद अनुकूल न हो, यह डर भी था। औरतें ज्यादा दूर तक नहीं सोच पातीं, उन्हें बस सामने की चीज दिखायी पड़ती है। तो फिर पूछने से लाभ? सो उन्होंने उस चीज के बारे में कुछ नहीं कहा, मगर सीने पर बोझ बना रहा। इस प्रकार का यह पहला काम था जो वह करने जा रहे थे और उनका परिवार सुखी था। पत्नी सुन्दर थी, सेवापरायण थी; तीनों बच्चे स्वस्थ थे, होनहार थे, क्लास में पहले नम्बर आते थे। उनका खाल किसी तरह दूर न होता था।

लेकिन सारा दुःख अनिश्चय में है । कहा भी तो है, संशयात्मा विनश्यति । “लेकिन ऐसी बात क्यों आरही है मेरे मन में ? मैं कौन हूँ ? मारने-जिलाने वाला तो भगवान् है । जिसकी आयु अभी शेष है वह पानी पीकर भी उठ बैठेगा और जिसका परवाना भगवान् के यहाँ से कट चुका उसको संजीवनी रस पिलाने से भी कोई लाभ नहीं ! व्यर्थ संशय में मत पड़ो अमोलक चंद !” अतः दूकान पर फिर जब दोस्त सब इकट्ठा हुए तो अमोलक चंद के मन में कोई अनिश्चय न था । मशीन का आर्डर दे दिया गया । महीने भर में मशीन आ भी गई और जहाँ उसे बैठना था, बैठ भी गई, और काम शुरू हो गया । काम जब शुरू हुआ तब पता चला कि उस चीज की कितनी जरूरत थी । धरती जुती पड़ी थी, बस बीज डालो और फसल काट लो !

यह चीज देखने में आ रही थी कि जब से हमारी पंचवर्षीय योजनाएँ सफल होने लगी हैं तब से बीमारियों का दौरा बढ़ गया है और तब से अंग्रेजी दवाइयों की बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ विलायत से उठकर हमारे यहाँ पहुँचती जा रही हैं । सोचने-विचारने वाले लोगों के लिये यह चीज काफी परेशानी का कारण थी—एक तो सब दवाएँ हर वक्त मिलती न थीं दूसरे उनकी कीमतें आसमान से बात करने लगीं थीं । अमोलक चंद की मशीन इसी कठिन सवाल का जवाब थी ।

और इसमें संदेह नहीं कि नन्हों सी यह मशीन सचमुच बड़ी गुणों वाली थी, शहर के सारे कबाड़ी पुरानी दवाओं की शीशियाँ और बोतलें आकर दूकान पर बेच जाते थे ।

उसके बाद फिर दवा तैयार करने की विधि बहुत सरल थी। बस नल में से साफ पानी लिया और शीशी और पानी मशीन के हवाले किया और अभी चंद मिनट पहले जो सिर्फ पानी था वह दवा की शकल में हाजिर है। आपको बस लेबुल चिपकाना है। सो लेबुल भी मोपाल के एक प्रेस से छपकर आ जाते थे। फिर क्या है चीज तैयार है, जिसे चाहे दिखा लो, कोई पकड़ नहीं सकता। यही तो सफाई थी उस मशीन की, वर्ना दस हजार रुपये किस बात के दिये थे।

धीरे-धीरे अमोलक चंद को इस धंधे में इतनी बरकत हुई कि एक मशीन कम पड़ने लगी और तब अमोलक चंद ने उसी मशीन को कमाई से दो और मशीनें मँगाईं। फिर दो और मँगाईं। और होते-होते इन दवाओं का एक बड़ा कारखाना हो गया। और फिर उनके काम का विस्तार इतना हुआ कि इस छोटे से इलाहाबाद शहर में बैठकर वह दूर-दूर कलकत्ता और बम्बई और मद्रास तक माल सप्लाई करने लगे।

उधर काम में बरकत हुई, इधर नयी-नयी इमारतें खड़ी होने लगीं, बच्चे पबलिक स्कूलों में पढ़ने लगे, घर की रंगत एक सिरे से बदल गई। अब उनकी गिनती शहर के बड़े रईसों में होने लगी। हर बड़े डिनर और पेट होम के न्योते उनके यहाँ आने लगे, और खुद उनके घर में बेरे और खानसामा दौड़ने लगे। भाग्य का यह नया रंग देखकर निर्मला भी प्रसन्न थी वह किसी से कहती न थी मगर उसका दृढ़ विश्वास था कि यह उसकी अचल राम-भक्ति का ही प्रसाद हैं। उसके दिल में ऐसा विचार आना अस्वाभाविक भी न था

क्योंकि इधर कुछ वरसों में उसके पति की भी धार्मिक रुचि बढ़ गई थी। गंगा स्नान का क्रम अधिक नियमित हो गया था। साधुओं को भोज अक्सर खिलाया जाने लगा था। गरीबों को कम्बल बाँटे जाने लगे थे। इतने सब पुण्य कर्म जब एक साथ जुटे हों तब भगवान् कैसे प्रसन्न न हों। और भगवान् जब प्रसन्न हैं तब कपड़े का व्यापार तो और बात है, मिट्टी को छुओ तो सोना हो जायगी। स्त्रियों के समाज में निर्मला का विशेष आदर होने लगा और वह बड़ी प्रसन्न थी। पहनने-ओढ़ने के तो अब उसके दिन रहे नहीं, यह साध वह अपनी बेटी चित्रा के माध्यम से पूरी कर लेती है, जो कि अब चौदह साल की सुन्दर किशोरी है और अँग्रेजी स्कूल में पढ़ने जाती है। लड़कों में से बड़ा प्रेम किशोर अच्छी नौकरी पाकर कलकत्ते चला गया है, और छोटा किशन ग्वालियर में सिंधिया पब्लिक स्कूल में पढ़ रहा है, जहां सब बड़े-बड़े आदमियों के लड़के पढ़ते हैं।

सारांश यह कि पैसा, कीर्ति, इज्जत, ऐसी कोई चीज न थी जो दस बरस के छोटे से अर्से में अमोलक चन्द ने नहीं कमा ली। और अब घर में बड़े लड़के की शादी की तैयारियाँ हो रही थीं। कलकत्ते के एक बड़े व्यापारी के यहाँ संबंध पक्का हुआ था और माँ-बाप को खुशी का ठिकाना न था। इस संबंध से समाज में उनकी नाक तो ऊँची होगी ही, लड़की भी बहुत अच्छी है, बिल्कुल मक्खन का गोला समझो। छरहरा वदन, जमीन तक लहराते हुए लम्बे-लम्बे बाल, बड़ी किस्मत से ऐसी बहू घर में आती है। और यह भी नहीं कि अनपढ़ हो। सीनियर केम्ब्रिज पास है,

फर-फर अंग्रेजी बोलती है, देखनेवालों की आँखें फटी की फटी रह जायेंगी। अमोलक चंद ने निर्मला से ठीक ही तो कहा था,- “बतलाओ, पुराने दिन होते तो सपने में भी हमें ऐसी वह नसोब होती?” और निर्मला ने आँख मूँदकर विनय पूर्वक भगवान् का स्मरण करते हुए कहा था,- “सब उसकी मर्जी है……”

अमोलक चंद ने थैलो का मुँह खोल दिया था और इस वक्त उनका मकान नयी दुलहिन की तरह सजा खड़ा था। देखें शहर वाले कि हाँसले से शादी करना किसको कहते हैं। तीन दिन पहले से ही सजावट का सब काम पूरा हो गया था और रात को जब भीतर-बाहर की सब रोशनियाँ बल उठतीं तो ऐसा मालूम होता कि जैसे परियों का राजमहल हो, और घुँघरुओं की बूमछनन अब वहाँ होने ही वाली है! घर नाते-रिश्ते की तमाम लड़कियों से भरा हुआ था, बच्चियाँ, किशोरियाँ, युवतियाँ, लड़कोर बहुएँ, प्रौढ़ाएँ, सभी थीं। सबकी अपनी-अपनी टोलियाँ बन गयी थीं और सब अपनी टोलियों में बैठी हुई इसके-उसके किस्से सुनाती रहतीं और एक दूसरे को छेड़ती रहती और इसी सब में दिन बीत जाता। कोई लड़की के ब्याह में तो आयी नहीं थीं कि चाहे दिखाने के लिये ही सही, काम में भी कुछ हाथ बटातीं। लड़के के ब्याह का न्योता पूरमपूर मस्ती का न्योता होता है। अतः मस्ती का बाजार पूरी तरह गर्म था। बच्चियाँ अपने घरौंदों में मग्न थीं; और किशोरियाँ और नवयुवतियाँ उन्हीं घरौंदों में हर खिड़की-दरवाजे से चोरी-चोरी अपने राजकुमारों को ले आतीं और फिर कानों में बातें होतीं,

आँखों से इशारे होते, हँसी की फुलझड़ियाँ छूटतीं और इसी नटखटपन में गर्मी का लम्बा, खस से शीतल दिन बातों-बातों में खत्म हो जाता। काम करने के लिए निर्मला थी, लेकिन उसे किसी से कोई शिकायत न थी, क्योंकि घर में पहली बार बहू लाने का आनन्द उसके अंग-अंग में फड़क रहा था— और बहू भी कैसी ? चाँद का टुकड़ा, रूप में, गुन में, सहर में लाख में एक। खुशी मनाने ही तो आई हैं सब, मनाने दो, काम ही कितना है ! और उतने सब काम के बीच में वह कभी इससे चुहल की एक बात कर लेती. कभी उससे और फिरकनी की तरह घर भर में नाचती रहती।

सब लोग इकट्ठा हो गये थे, अब बस किशन की कमी थी, फिर घर पूरा समझो। और वह भी अब आया ही चाहता है। इस्तहान चल रहे हैं न।

आज किसी गाड़ी से किशन को आना चाहिये। सबेरे से नौ बार रेलवे एन्क्वायरी को फोन किया जा चुका है— एक के पूछने से दूसरे का काम नहीं चलता।

तभी दरवाजे पर आवाज सुनाई पड़ी— तार।

अमोलक चंद अपनी तरफ से डग बढ़ाते हुए आये, उधर निर्मला हाथ का काम छोड़कर दौड़ी और इधर चित्रा ने तेजी से आगे बढ़कर नौकर के हाथ से तार लेते हुए कहा— भैया का तार है.....

अमोलकचंद ने कहा,— “देखो तो किस गाड़ी से आने को लिखा है”.....

चित्रा ने जल्दी-जल्दी तार खोला— और चीख पड़ी……

यकायक सब तरफ मौत का सन्नाटा छा गया, वक्त थम गया……

तार में लिखा था—आपका लड़का घोड़े से गिर पड़ा। सख्त चोट आयी है। फौरन आइए।

तार स्कूल के डाइरेक्टर की तरफ से था।

अब काटो तो किसी के बदन में खून नहीं। एक को दूसरे से आँख मिलाने में डर मालूम हो रहा था।

मिनटों में खुशी की फुलझड़ियाँ जो चारों तरफ छूट रहीं थी, राख हो गयीं और खिलखिलाहटों का दम घुट गया। जहाँ अभी शहनाई बज रही थी वहाँ अब सिसकियाँ दबायी जा रही थीं। शादी की तैयारियाँ एक तरफ, निर्मला और अमोलक चंद पहली गाड़ी से ग्वालियर के लिये रवाना हुए।

किशन बिल्कुल बेहोश पड़ा था, उसके पैर में गैंग्रीन हो गया था जो बिजली की तेजी से बढ़ता जा रहा था, और अब उसकी जान बचाने का कोई उपाय था तो यही कि फौरन उसका पैर काट दिया जाय। उसी के लिए बाप को तार देकर बुलाया गया था। वैसे चोट तीन दिन पहले लगी थी और जान का कोई खतरा न था। सिविल सर्जन ने दिन भर में पचास लाख यूनिट पेनिसिलीन घायल के शरीर में डाल दी और काफी निश्चिन्त होकर बैठा रहा कि अब डरने की कोई बात नहीं है, घाव सड़ने नहीं पायेगा। लेकिन अगले दिन सुबह जो उसने मरीज की हालत देखी तो माथा ठोंक लिया डाक्टर हैरान था कि यह मामला क्या है!

भोलाराम का जीव

[हरिशंकर परसाई]

ऐसा कभी नहीं हुआ था ।

धर्मराज लाखों वर्षों से असंख्य आत्मियों को कर्म और सिफारिश के आधार पर स्वर्ग या नर्क में निवास-स्थान 'अलौट' करते आ रहे थे । पर ऐसा कभी नहीं हुआ था ।

सामने बैठे चित्रगुप्त बार बार चश्मा पोंछ; बार बार थूक से पन्ने पलट, रजिस्टर देख रहे थे । गलती पकड़ में नहीं आ रही थी । आखिर उन्होंने खीझकर रजिस्टर इतनी जोर से बन्द किया कि मक्खी चपेट में आ गई । उसे निकालते हुए वे बोले, "महाराज, रिकार्ड सब ठीक हैं । भोलाराम के जीव ने पाँच दिन पहले देह त्यागी और यमदूत के साथ इस लोक के लिये रवाना भी हुआ, पर यहाँ अभी तक नहीं पहुँचा ।"

धर्मराज ने पूछा, "और वह दूत कहाँ ?"

"महाराज वह भी ला पता हैं ।"

इसी समय द्वार खुले और एक यमदूत बड़ा बदहवास वहाँ आया । उसका मौलिक कुरूप चेहरा परिश्रम, परेशानी और भय के कारण और भी विकृत हो गया था । उसे देखते ही

चित्रगुप्त चिला उठे, “अरे तू कहाँ रहा इतने दिन ? भोलाराम का जीव कहाँ है ?”

यमदूत हाथ जोड़कर बोला, “दयानिधान, मैं कैसे बतलाऊँ कि क्या हो गया । आज तक मैंने धोखा नहीं खाया था, पर भोलाराम का जीव मुझे चकमा दे गया । पाँच दिन पहिले जब जीव ने भोलाराम की देह को त्यागा, तब मैंने उसे पकड़ा और इस लोक की यात्रा आरंभ की । नगर के बाहर ज्योंही मैं उसे लेकर एक तीव्र वायु-तरंग पर सवार हुआ त्योंही वह मेरी चंगुल से छूटकर न जाने कहाँ गायब हो गया । इन पाँच दिनों में मैंने सारा ब्रह्मांड छान डाला, पर उसका कहीं पता नहीं चला ।”

धर्मराज क्रोध से बोले, “मूर्ख, जीवों को लाते लाते बूढ़ा हो गया, फिर भी एक मामूली बूढ़े आदमी के जीव ने तुझे चकमा दे दिया ।”

दूत ने सिर झुकाकर कहा, “महाराज, मेरी सावधानी में बिल्कुल कसर नहीं थी । मेरे इन अभ्यस्त हाथों से अच्छे अच्छे वकील भी नहीं छूट सके । पर इस बार तो कोई इन्द्रजाल ही हो गया ।”

चित्रगुप्त ने कहा, “महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस का व्यापार बहुत चला है । लोग दोस्तों को कुछ चीज भेजते हैं, और उसे रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं । होजरी के पार्सलों के मोजे रेलवे अफसर पहिनते हैं । मालगाड़ी के डब्बे के डब्बे रास्ते में कट जाते हैं । एक बात और

हो रही है। राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर बंद कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी किसी विरोधी ने, मरने के बाद, खराबी करने के लिए नहीं उड़ा दिया ?”

धर्मराजने व्यंग से चित्रगुप्त की ओर देखते हुए कहा, “तुम्हारी भी रिटायर होने की उम्र आ गई। भला भोलाराम जैसे नगण्य दीन आदमी से किसी को क्या लेना-देना ?”

इसी समय कहीं से घूमते घामते नारद मुनि वहाँ आ गये। धर्मराज को गुमसुम बैठे देख बोले “क्यों धर्मराज कैसे चिंतित बैठे हो ? क्या नर्कमें निवास स्थान की समस्या अभी हल नहीं हुई ?”

धर्मराज ने कहा, “वह समस्या तो कभी की हल हो गई। नर्क में पिछले सालों में बड़े गुणी कारीगर आ गए हैं। कई इमारतों के ठेकेदार हैं, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रई इमारतें बनाईं। बड़े बड़े ऐजीनियर भी आ गए हैं, जिन्होंने ठेकेदारों से मिलकर पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया। ओवर-सीयर हैं, जिन्होंने उन मजदूरों की हाजिरी भर कर पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गये ही नहीं। इन्होंने बहुत जल्दी नर्क में कई इमारतें तान दी हैं। वह समस्या तो हल हो गई, पर एक बड़ी विकट उलझन आ गई है। भोलाराम नाम के एक आदमी की पाँच दिन पहिले मृत्यु हुई। उसके जीव को यह दूत यहाँ ला रहा था, कि जीव इसे रास्ते में चकमा देकर भाग गया। इसने सारा ब्रह्मांड छान डाला, पर वह कहीं नहीं मिला। अगर ऐसा होने लगा, तो पाप-पुण्य का भेद ही मिट जायगा।”

नारद ने पूछा, ‘उस पर इनकमटेक्स तो बकाया नहीं था ? हो सकता है, उन लोगों ने रोक लिया हो।’

चित्रगुप्त ने कहा, इनकम होती तो टेक्स होता। मुखमरा था।’

नारद बोले, ‘मामला बड़ा दिलचस्प है। अच्छा मुझे उसका नाम, पता तो बतलाओ। मैं पृथ्वी पर जाता हूँ।’

चित्रगुप्त ने रजिस्टर देखकर बताया—‘भोलाराम नाम था उसका। जबलपुर शहर में घमापुर मुहल्ले में नाले के किनारे एक डेढ़ कमरे के टूटे फूटे मकान में वह परिवार समेत रहता था। उसकी एक स्त्री थी, दो लड़के और एक लड़की। उम्र लगभग ६० साल। सरकारी नौकर था। पाँच साल पहिले रिटायर हो गया था। मकान का किराया उसने एक साल से नहीं दिया, इसलिये मकान-मालिक उसे निकालना चाहता था। इतने में भोलाराम ने संसार ही छोड़ दिया। आज पाँचवाँ दिन है। बहुत संभव है कि, अगर मकान-मालिक वास्तविक मकान-मालिक है, तो उसने भोलाराम के मरते ही, उसके परिवार को निकाल दिया होगा। इसलिए आपको परिवार की तलाश में काफी धूमना पड़ेगा।’



माँ-बेटी के सम्मिलित क्रन्दन से ही नारद भोलाराम का मकान पहिचान गये।

द्वार पर जाकर उन्होंने आवाज लगाई, “नारायन ! लड़की ने देखकर कहा, “आगे जाओ, महाराज”

नारद ने कहा, “मुझे भिन्ना नहीं चाहिये, मुझे भोलाराम के बारे में कुछ पृष्ठ-ताष्ठ करनी है। अपनी माँ को जरा बाहर भेजो बेटी।’

भोलाराम की पत्नी बाहर आई। नारद ने कहा, 'माता भोलाराम को क्या बीमारी थी ?'

“क्या बताऊँ ? गरीबी की बीमारी थी। पाँच साल हो गए पेंशन पर बैठे। पर पेंशन अभी तक नहीं मिली। हर १०-१५ दिन में एक दरखास्त देते थे, पर वहाँ से या तो जवाब आता ही नहीं था और आता, तो यही की तुम्हारी पेंशन के मामले पर विचार हो रहा है। इन पाँच सालों में सब गहने बेचकर हम लोग खा गए। फिर बर्तन बिके। अब कुछ नहीं बचा था। फाँके होने लगे थे चिंता में घुलते-घुलते और भूखे मरते-मरते उन्होंने दम तोड़ दी।”

नारद ने कहा, “क्या करोगी माँ ? उनकी इतनी ही उम्र थी”

‘ऐसा मत कहो, महाराज ! उम्र तो बहुत थी। ५०-६० रुपया महीना पेन्शन मिलती तो कुछ और काम करके गुजारा हो जाता। पर क्या करें ? पाँच साल नौकरी से बैठे हो गये और अभी तक एक कौड़ी नहीं मिली।’

दुःख की कथा सुनने की फुरसत नारद को थी नहीं। वे अपने मुँह पर आये “माँ, यह तो बताओ कि यहाँ किसी से उनका विशेष प्रेम था, जिनमें उनका जी लगा हो ?”

पत्नी बोली, “लगाव तो महाराज, बाल बच्चों से ही होता है”

‘नहीं परिवार के बाहर भी हो सकता है। मेरा मतलब है, किसी स्त्री—’

स्त्री ने, गुरीकर नारद की ओर देखा। बोली, “हर कुछ मत बको महाराज तुम साधू हो उचक्के नहीं हो। जिन्दगी भर उन्होंने किसी दूसरी स्त्री को आँख उठाकर नहीं देखा।”

नारद हँसकर बोले, हाँ, तुम्हारा यह सोचना ठीक ही है। यही हर अच्छी गृहस्थी का आधार है। अच्छा माता मैं चला।”

स्त्री ने कहा “महाराज, आप तो साधू हैं; सिद्ध पुरुष हैं। कुछ ऐसा नहीं कर सकते कि उनकी रुकी हुई पेन्शन मिल जाए। इन बच्चों का पेट कुछ दिन भर जाए।”

नारद को दया आ गई थी। वे कहने लगे, “साधुओं की बात कौन मानता है? मेरा यहाँ कोई मठ तो है नहीं। फिर भी मैं सरकारी दफ्तर में जाऊँगा और कोशिश करूँगा।”

वहाँ से चलकर नारद सरकारी दफ्तर में पहुँचे। वहाँ पहिले ही कमरे में बैठे बाबू से उन्होंने भोलाराम के केश के बारे में बातें की। उस बाबू ने उन्हें ध्यान पूर्वक देखा और बोला, “भोलाराम ने दरखास्तें तो भेजी थी, पर उन पर वजन नहीं रखा था, इसलिये कहीं उड़ गई होंगी।”

नारद ने कहा, “भई, ये बहुत से ‘पेपर-वेट’ तो रखे हैं। इन्हें क्यों नहीं रख दिया!”

बाबू हँसा, आप साधु हैं, आपको दुनियादारी समझ में नहीं आती। दरखास्तें ‘पेपर वेट’ से नहीं दबतीं। खैर, आप उस कमरे में बैठे बाबू से मिलिये।”

नारद उस बाबू के पास गए। उसने तीसरे के पास भेजा, तीसरे ने चौथे के पास, चौथे ने पाँचवें के पास। जब नारद २५-३० बाबुओं और अफसरों के पास घूम आए तब एक चपरासी ने कहा, “महाराज, आप क्यों इस भ्रम में पड़ गए। आप अगर

साल भर भी यहाँ चक्कर लगाते रहें, तो भी काम नहीं होगा आप तो सीधे बड़े साहब से मिलिए। उन्हें खुश कर लिया, तो अभी काम हो जायगा ।’

नारद बड़े साहब के कमरे में पहुँचे। बाहर चपरासी ऊँच रहा था, इसलिए उन्हें किसी ने छेड़ा नहीं। बिना ‘विजिटिंग कार्ड’ के आया देख, साहब बड़े नाराज हुए। ‘बोले, इसे कोई मंदिर-वंदिर समझ लिया है क्या? धड़धड़ाते चले आये! चिट क्यों नहीं भेजी?’

नारद ने कहा ‘कैसे भेजता? चपरासी सो रहा है।’

‘क्या काम है?’ साहब ने रोब से पूछा।

नारद ने भोलाराम का पेंशन केस बतलाया।

साहब बोले, ‘आप हैं वैरागी। दफ्तरों के रीति-रिवाज नहीं जानते। असल में भोलाराम ने गलती की। भई, यह भी एक मंदिर है। यहां भी दान-पुण्य करना पड़ता है। आप भोलाराम के आत्मीय मालूम होते हैं। भोलाराम की दरखास्तें उड़ रहीं हैं, उन पर वजन रखिये।’

नारद ने सोचा कि फिर यहाँ वजन की समस्या खड़ी हो गई। साहब बोले ‘भई, सरकारी पैसे का मामला है! पेंशन का केस बीसों दफ्तरों में जाता है। देर लग ही जाती है। बीसों बार एक ही बात को बीस जगह, लिखना पड़ता है, तब पक्की होती है। जितनी पेंशन मिलती है, उतने की स्टेशनरी लग जाती है। हाँ जल्दी भी हो सकती है, मगर—’साहब रुके।

नारद ने कहा, 'मगर क्या ?'

साहब ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा, 'मगर वजन चाहिये । आप समझे नहीं । जैसे आपकी यह सुन्दर वीणा है, इसका भी वजन भोलाराम की दरखास्त पर रखा जा सकता है । मेरी लड़की गाना-बजाना सीखती । यह मैं उसे दे दूँगा । साधू संतों की वीणा से तो अच्छे स्वर निकलते हैं ।'

नारद अपनी वीणा छिनते देख जरा घबड़ाये । पर फिर संभल कर उन्होंने वीणा टेबिल पर रखकर कहा, 'यह लीजिये । अब जरा जल्दी उसकी पेंशन का आर्डर निकाल दीजिये ।'

साहब ने प्रसन्नता से उन्हें कुर्सी दी, वीणा को एक कोने रखा और घंटी बजाई । चपरासी हाजिर हुआ ।

साहब ने हुक्म दिया, 'बड़े बाबू से भोलाराम के केस की फाइल लाओ ।'

थोड़ी देर बाद चपरासी भोलाराम की १००-१५० दरखास्तों से भरी फाइल लेकर आया । उसमें पेन्शन के कागजात भी थे । साहब ने फाइल पर का नाम देखा और निश्चित करने के लिये पृष्ठा, क्या नाम बताया साधू जी आपने ?'

नारद समझे कि साहब कुछ ऊँचा सुनता है । इसलिये जोर से बोले, 'भोलाराम' !

सहसा फाइल में से आवाज आई 'कौन पुकार रहा है मुझे ? पोस्टमेन है क्या ? पेन्शन का आर्डर आ गया ?'

नारद चौके । पर दूसरे क्षण बात समझ गये । बोले,
‘भोलाराम ! तुम क्या भोलाराम के जीव हो ?’

‘हाँ !’ आवाज आई ।

नारद ने कहा, ‘मैं नारद हूँ ।’ मैं तुम्हें लेने आया हूँ ।
चलो स्वर्ग में तुम्हारा इन्तजार हो रहा है ।

आवाज आई, ‘मुझे नहीं जाना । मैं तो पेंशन की दर-
खास्तों में अटका हूँ । यहीं मेरा मन लगा है । मैं अपनी
दरखास्तें छोड़कर नहीं जा सकता ।’



सवा रुपये

[अमर कान्त]

मेरे बाबा पूरे अस्सी वर्ष के होकर मरे। वे अन्त तक पूर्णतया स्वस्थ दीखते रहे। किन्तु उन्हें दिलके दौरेकी बीमारी थी, और उसी ने अचानक एक दिन उनके गौरवशाली जीवन का अन्त कर दिया।

बाबा हम लोगों से अलग रहते थे, जिसके स्पष्ट कारण थे। उन्होंने तीन शादियाँ की थीं। पहली शादी से मेरे पिताजी तथा दो लड़कियाँ थीं। दूसरी से कोई नहीं और तीसरी शादी से दो लड़के और एक लड़की थी। दादी, बाबा की तीसरी पत्नी, दिमाग की गर्म और जवान की तेज थीं। पिताजी जब अपने पैरों पर खड़े होने लायक हुए, तो बाबा ने यही उचित समझा कि अलग हो जाएँ। घर के दो हिस्से कर दिये गये और एक में बाबा, दादी, कमला वुआ तथा रग्यू और चन्दू चाचा के साथ रहने लगे।

हमारे बाबा काफी मोटे थे। मुँह पर बड़े-बड़े गलमुच्छ थे, जो कानों से लिपटे रहते। उन्हें देख कर पुराने जमाने के मेवाड़ के राजपूतों की याद आ जाती थी। मूँछों में वे वाकायदा तेल लगाते, और उन्हें रोज कंधे से देर तक झाड़ते। मोटी, बड़ी सी चुटिया के महत्व को कायम रखने के लिए वे सिर को बराबर घुटाते रहते। नहाते समय पीछे से बायें हाथ से चुटिया उठा कर, उस पर दाहिने हाथ से मारते। पट-पट की आवाज होती। इस अवसर पर घर के या मुहल्ले के कुछ शैतान लड़के अवश्य उपस्थित रहते।

पट-पट की आवाज सुनकर, ही-ही करके हँसाते और उनसे वैसा फिर करने का आग्रह करते ।

बाहर बरामदे में लम्बी-चौड़ी खटिया पर मसनद का सहारा लेकर, बाबा जब आराम से बैठने, तो उनकी तोंद अपनी बहार दिखाने लगती । सबेरे नहा-धोकर तथा-पूजा पाठ करके तैयार होने के फौरन बाद, ताजा हलवा तथा हनुमान जी वाले खान्दानो चाँदी के कठोरे में एक अँगुल मोटी मलाई से आच्छादित गैया का गाढ़ा दूध आता । बाबा लकार-डकार कर हलवा खाते । फिर एक साँस में दूध पी जाते । उस समय मूँछ के बालों से लटकती-खेलती हुई दूध की बूँदे साफ देखी जा सकती थीं । इस डबल नाश्ते के बाद भोजन दिन के डेढ़-दो बजे के लगभग करते । शाम को भी हल्का नाश्ता चलता, कभी चने की घुघनी, कभी मटर की फलियाँ, कभी गाजर और कभी शकरकंद । रात को भोजन कहीं ग्यारह बजे तक होता ।

बाबा के अपने नियम थे और अपने आचार-विचार । महीने में घर से केवल एक बार बाहर निकलते । घुटने तक मोटी धोती, पुरानी शानदार मिर्जई, सिर पर मोटे रस्से की तरह लिपटी पगड़ी और पैरों में कड़वे तेल से मुलायम किए हुए चमरौधे जूते । मिर्जापुरी लाठी के सहारे, ठक-ठक करते, बहुत धीरे-धीरे चलते । एक कदम लगभग तीन-साढ़े तीन इंच का पड़ता । खस-खस की आवाज होती रहती । चुपचाप चलते जाते । रास्ते में कुछ खाना पीना हराम था । गन्तव्य स्थान पर भी पहुँच कर, घंटों बैठे गप्पें लड़ाते रहते दुनियाँ वालों को गालियाँ सुनाते, अपने जमाने के

तौर-तरीकों की अथक सगाहना करते । परन्तु इस बीच एक बूँद जल भी वहाँ का अपने मुँह में न डालते ।

गालियाँ इन्हें अत्यन्त प्रिय थीं । कोई बात इधर-उधर की हुई नहीं, कि मुँह से भर-भर टेढ़ी-तिगड़ी, मजी-मजाई गालियों की बौछार होने लगती, जैसे छेड़ने पर क्रोधित मधुमक्खियाँ छत्ते से भर-भर निकल आती हैं । बच्चे हों या बड़े, अम्माँ हों या बाबू जी, नानी हों या दादी, सब के साथ पुरुषों की खबर ते-घंटों बड़बड़-बड़बड़ । पिता जी ने उनके आराम में कोई कमी की, दादी गिर पड़ी लड़कों ने शोर मचाया, किसी ने देर से भोजन किया, कोई फैशन से रहने लगा—सभी मौकों पर बिना पक्षपात, अवाधित गति से गालियाँ उनके मुख से निकलतीं ।

अभी उस रोज की बात है । मैं छुट्टियों में कानेज से घर लौटा था, यहाँ मैं यह कह दूँ, कि मैं जग फैशनपरस्त और घुमक्कड़ किम्म का व्यक्ति हूँ । इस पर बाबा ने ऐलान कर दिया है कि मैं पूरा आवारा हूँ । खैर, मैं स्टेशन से घर आकर, सबसे पहले बाबा के पैर छू कर, उनके पास बैठ गया । कानेज की इधर-उधर की बातें पूछने के पश्चात् वे गाँव का हाल सुनाने लगे ।

“देख, रे बाबू, तेरे जाने के बाद गाँव पर बड़ी आफत आई । भोला, कानू, जतिया और ढेला मर गये । गंगा मैया की भी कृपा न रही । जोरों की बाढ़ आई, और सारे खेत-खलिहान चौपट हो गये । कलियुग आ गया है ! न आपस में भी प्रेम नहीं रहा । गुण्डे लफंगे बढ़ रहे हैं । यह चन्दू बड़ा आवारा निकला । हमेशा फौजदारी करने को तैयार रहता है । बहू-बेटियों की इज्जत को इज्जत नहीं समझता । साले की खोपड़ी पर एक लट्ट पड़ जाए, तो सारी लफंगाई हिरन हो जाए...”

इतना कह कर, बाबा अचानक मेरी तरफ घूरने लगे। फिर कड़ी आवाज में बोले, “और तू ही कौन अच्छा है ? आवारा तो तू भी है। नालायक, गधा कहीं का ! चुपचाप सुन रहा है। तेरे लच्छन क्या अच्छे हैं ? तू तो चन्दू से भी दो जौ आगे है। निकल जा यहाँ से, साले !”

तब मैं यह सोचते हुए, कि बुढ़ा पागल हो गया है, भीतर चला गया था।

वे एक बड़ी भारी समस्या थे। बाहर बराम्दे में वे बैठते, परन्तु घर में कहाँ क्या हो रहा है, इसके प्रति सर्वदा उनका आकर्षण एवं सतर्कता बनी रहती। कहीं दूर घर में ‘खट’ हुआ कि बाबा चिल्ला पड़े, क्या हुआ, रे ?” कौन सुनता है, पर वह हैं कि बड़बड़ाये जा रहे हैं, “कोई साला नहीं सुनता। जरूर थाली गिराई होगी। घर को चौपट कर देंगे। यह बुढ़िया (दादी) साली भी नहीं बोलती। कब ने चिल्ला रहा हूँ—” कोई बाहर जाने को हुआ, तो उसे ललकारा। कोई बहू अनजान में जरा जोर से हँस पड़ी तो उसे गाली दी। सामने से चुपचाप जाने वाले प्रत्येक अनजान व्यक्ति का नाम-गाँव पूछा। कोई बहस हो, तो खुद भी क्रुद्ध पड़ते। कोई घटना उनकी आलोचना से नहीं दचती थी। कोई भी व्यक्ति उनकी पूछ-ताँछ और जाँच पड़ताल का खतरा उठाये बिना सामने से नहीं गुजर सकता था। एक ही जगह से कई-कई मोर्चे सँभालते थे।

उनके मारे घर के लोगों के नाक में दम था। कभी कोई शान्ति से नहीं बैठ सकता था और इसीलिए शायद लोग उन्हें मन-ही-मन कोसते थे। घर की औरतें फुसफुसतीं, “बुढ़ा कौए की जीभ खा कर आया है; मौत भी नहीं आती उसे !” घंटों

चिल्लाते रहते, और सब कान में तेल डाले बैठे रहते। रात को प्यास लगने पर पानी देने वाला कोई न मिलता। काँखते-कराहते रहते, “बुड्ढा इसी तरह बर्ताता रहता है। कौन उठे ? उँह ?” बेचारे हार कर अपने-आप ही उठते, धीरे-धीरे किसी तरह घड़े के पास जाते, और गटर-गटर पानी पीते। सिर में दर्द होने पर लौंग पीस कर लगा दी जाती। चलो छुट्टी हुई। फिर कोई पास न फटकता। “बुड्ढे को बकने-भकने दो। झूठ-मूठ का बहाना किया करता है।”

अब किसी में उनका सेवा-सत्कार करने का उत्साह शेष नहीं था। इसकी भी एक हद और मियाद होती है, जिसे बाबा अपनी लंबी उम्र के कारण पार कर गये थे। पिता जी और चाचा जी कितना ध्यान देते ! उनकी अपनी भंभटें थीं। उनके पुत्र-पुत्रियाँ पौत्र-पौत्रियाँ हो गये थे, और उनका प्यार इतना बँटा हुआ था, कि बाबा के लिए शायद ही कुछ बचा हो। यह प्यार उस समय पानी के बुलबुले की तरह प्रकट होता, जब कोई असाधारण घटना घट जाती—जैसे उन्हें कहीं चोट आ जाती, या ज्वर आ जाता, या पेट में शूल उठता। पिता जी या कोई चाचा जी ध्यान आने पर कहते, “अरे बहू, हल्दी गर्म करके लगा दे !” या “तुलसी का काढ़ा पिला दे !” या “लवणभास्कर चूर्ण खिला दे !” “कैसी तबीयत है काका ? तुम अपनी देह की परवाह नहीं करते। थोड़ा टहल ही लिया करो।” यह कह कर, भीतर या बाहर, जैसी जरूरत हो; चले जाते। बहुत देर बाद एक छोटी सी लड़की आती, और कहती, “लो, बाबा, लगा लो !” या “पोलो” जवान बहुओं और लड़कियों को पाम आने में इसलिए एतराज था कि बाबा हमेशा डकारते रहते, और खों-खों खांस

कर वहीं जमीन पर थूकते रहते । “बाबा रे बाबा ! कौन जाए बाहर !”

उनकी उम्र इतनी अधिक हो गयी थी, कि लोग साफ-साफ ईमानदारी से कह देते, “अब उनके आराम से प्राण निकल जाए, तो अच्छा हो ।” कभी पिता जी या चाचा जी कहते, “कक्का अब तो यही इच्छा है कि हौसले से तुम्हारा क्रिया-कर्म करूँ ।” और बाबा इस पर उस दबू भूठ बोलने वाले की तरह सिर हिलाते, जो भरी महफिल में अपने भूठ का भंडाफोड़ होने पर “जी हाँ, जी हाँ ” करता है । जैसे बाबा के पास अपने जिन्दा रहने के पक्ष में कोई दलील न हो, और वे कोई अपराध करते हुए, रंगे हाथों पकड़े गये हों ।

और बड़े लोग बाबा के प्रति जितने लापरवाह थे, उतने ही बच्चों को उनमें दिलचस्पी थी । दिन भर ये उनके चारों ओर मँडराया करते, और बाबा जितना उन बच्चों के हँगामे और नाज-नखरे बगदाश्त करते, उतना घर का कोई नहीं । उन्होंने उन्हें सिर पर चढ़ा रक्खा था । दूध से भरा गिलास पटक, बाल्टी के साफ पानी को खराब कर, अम्माँ की साफ साड़ी में मिट्टी से सने हाथ पोंछ, वे सरपट बाबा के पास भाग आते । और वहाँ किसी का बस न चलता । उन्होंने कह दिया था, “खबरदार, लड़कों को कोई न मारे ! किसी ने हाथ चलाया तो मुझसे बुरा कोई न होगा ।”

सचमुच वे बड़े बुरे हो जाते थे । किसी ने कहा नहीं, कि अम्माँ या दीदी ने मारा है, कि वे आपे से बाहर हो जाते । लड़के का हाथ पकड़ कर, गुस्से से काँपते सीधे भीतर चले जाते, और ललकार उठते “किस हरामजादी ने मुन्ना को मारा है ? आये

सामने, तो हाथ तोड़ दूँ। बार-बार कहता हूँ कि बच्चों को न मारो। लेकिन कोई सुनता ही नहीं। बहू, तुम एक बात साफ-साफ सुन लो। अगर तुमने आगे लल्लू पर हाथ उठाया, तो तुम्हारा गला भिरोड़ दूँगा। किसी साले की न सुनूँगा।” यह बड़बड़ बहुत देरी तक चलती रहती।

बड़ी मुश्किल तो यह थी, कि वे सभी लड़कों से खोद-खोद कर पूछते, “किसी ने कुछ तुम्हें कहा तो नहीं, मारा तो नहीं!” इसमें कोई मतलब नहीं, कि आज मारा है या कल। बस, मारा है, कि नहीं! और लड़के तो लड़के ही ठहरे। यदि सामने हलवे का कटोरा या नमकीन की तश्तरी हुई, तो उनके लिये मारने या लगभग मारने की सी कोई बात हो जाना कोई कठिन नहीं। और तब घर सिर पर! कभी-कभी ऐसा होता, एक दिन की मार के लिये कई दिनों तक डांट चलती रहती। कारण यह, कि बच्चे कहते, कि अम्माँ या दीदी या बुआ ने कल मारा था। और छोटे बच्चे तो महीने भर पुरानी घटना को भी कल ही की समझते और बताते हैं। और बाबा समझते कि जिन घटना के लिए कल डाँट चुके हैं, उससे कोई भिन्न बात हो गयी है। उनके वाक्-वाण निकलने लगते, और घर के लोग स्तम्भित हो जाते, की वे-बात की बात पर बुढ़ा आफत मचाये दे रहा है।

खाने के समय तो गदग-सा मच जाता। बाबा जब तक सब बच्चों को बुला न लेते, खाने में हाथ न लगाते। बुलाने की अकसर उन्हें जरूरत ही न पड़ती। वे खुद लालची पिल्लों की तरह उनके खाने के समय न मालूम कहाँ से, किस कोने से भर-भर इकट्ठे हो जाते। दो सबसे छोटे बच्चे, मुन्नी और शेखू, उनकी

गोद में डट जाते और अन्य थाली के सामने, दायें और बायें। अकसर जगह के लिये युद्ध हो जाता। “बाबा के पास मैं बैठूँगा,” या “कल यहाँ मैं बैठा था। ऊँ, ऊँ!” बाबा किसी तरह समस्या को हल कर देते। फिर खाने के दौरान में भी महान कठिनाइयाँ उपस्थित हो जातीं। कोई गोटी खाते-खाते वहीं चावल सान देता, तो दूसरा उधर से हाथ-पैर पटकता उठ जाता, कि “मैं इधर नहीं खाऊँगा। उसने चावल सान दिया है।” अपनी तरफ भात कौन कितना खींचे, आलू की तरकारी कितना खाये, घी की दाल का कितना उपयोग करे, इन प्रश्नों पर भी गम्भीर मतभेद हो जाते, और फौजदारी तक की नौबत आ जाती। इधर दो वर्ष की छोटी मुन्नी सत्याग्रह कर देती। उसको एतराज होता, कि बाबा शेखू या श्याम को पहले क्यों खिलाते हैं। वह बाबा की छाती पर नन्हें-नन्हें हाथों से मारने तथा हाथ पैर पटकने लगती। परन्तु बाबा इन बखेड़ों से जग भी विचलित न होते और सभी समस्याओं का अहिंसात्मक तरीकों से हल करते। अगर कोई लड़कों से कहता, “भागो, बाबा को खाने दो,” तो अपना ही अहित करता। बाबा कहते, “वे क्यों भागें? तू भाग जा।” और वे उसे वहाँ से हटा कर ही मानते।

बाबा की एक और आदत थी। वे रोज टेंट में एक या सवा रुपये की रेजगारी बाँधते, जो लड़कों के लिये सुरक्षित रहती। यूँ बाबा एक नम्बर के कंजूस थे। उनके पास चार-पाँच हजार रुपये थे, किन्तु किसी भी महत्वपूर्ण मौके पर उन्होंने उन रुपयों में से एक पाई भी नहीं निकाली। घर का काम चूल्हे-भाड़ में जाए, वे रुपये अपनी जगह पर बने रहते। घर की और प्रकार की फिजूलखर्चियों पर वे बड़बड़ाया करते, किन्तु जहाँ तक बच्चों

के लिये टेंट में एक या सवा रुपया बाँधने का प्रश्न था, इस में जरा भी भूल-चूक नहीं होने देते थे। वे टेंट से पैसे खुद कभी न निकालते। बच्चे उनके शरीर पर कूद कर, कमर में हाथ डालते और पैसे निकालते। कभी-कभी नन्हें-नन्हें हाथों से पैसे न निकलते, तो बाबा उन हाथों पर अपना हाथ रखकर निकलवाते, जैसे उसका सब श्रेय बच्चों को ही हो। पैसे निकालते समय उनकी आँखें चमक उठतीं यद्यपि वे मूढ़ी गम्भीरता से कोसते जाते, “अरे, क्या करता है, लल्लू ? क्या करती है, मुन्नी ? बुड्ढे को पल भर को भी चैन नहीं तुम शैतानों के मारे।” कौन सुनता है ? और अन्त में पैसों का समान वितरण होता है।

घर वालों को, बच्चों को इस तरह पैसे देने की बाबा की आदत पसन्द नहीं थी। प्रथम तो उससे बच्चों की आदत और सेहत खराब होती थी। वे उन पैसों से अगड़म-बगड़म चीजें खरीद कर खाते थे। इसके अलावा एक दूसरा भी पहलू था। दोनों खानदानों के लोग यह सोचते, कि वुड्ढा जो कुछ इकट्ठा कर सका है, वह मूठ-मूठ पानी की तरह बहा रहा है। मरने तक तो शायद एक कौड़ी भी न बचे। लोग बाबा से कहते “तुम नाहक पैसे बर्बाद करते हो। इससे लड़के चौपट हो जाएँगे।” परन्तु बाबा ने इन बातों पर कभी कान नहीं दिया।

उन दिनों बाबा की तबीयत गिरी हुई थी। वे कमजोर हो गये थे और रात को बुरी तरह कराहते थे। प्रथम बार जैसे उन्हें दिल का दौरा हुआ था; वैसे ही आसार नजर आते थे।

मुझे याद है कि इतवार का दिन था। रोज की तरह बच्चे पैसे लेने को इकट्ठे हुए। कई हाथ लगे टेंट में। हरि अभी

नहीं आया था । वह भी आ गया । वह खुशी से चिल्ला उठा, और बाबा के सिरहाने पहुँचने के लिये पास में रखे स्टूल पर चढ़ गया । वह खटिया पर झल्लाँग मारने ही वाला था कि स्टूल उसके पैरों के धक्के को सँभाल न सका और हरि को लिये-दिये नीचे गिर पड़ा । पास ही रखी एक छोटी चौकी का कोना उसके माथे में धँस गया । खून का फौवारा बूटने लगा ।

बाबा “हाय, हाय” कर उठे । चारों ओर शोर मच गया । लोग दौड़े आये । बेहोश हुए हरि को ले कर दो व्यक्ति अस्पताल गये । औरतें चीख-चिल्ला रहीं थीं ।

हरि के अस्पताल से वापिस आने पर कुछ शान्ति हुई, तो लोग बाबा को बुरा-भला कहने लगे । हरि मेरा ही लड़का है । मुझे बाबा पर सख्त क्रोध आ रहा था ।

पिता जी रुखाई से बोले, “कक्का, तुम लड़कों में लड़के बन जाते हो । इन सालों को ऐसा सिर पर चढ़ा रखा है, कि पूछो मत । हरि तो किसी का कहना मानता ही नहीं । कम्बख्त किसी दिन जान से हाथ धो बैठेगा ।”

बाबा, जैसे अपराध किया हो; धीरे से बोले, “मैंने क्या किया, भाई ?”

मैं खार खाये बैठा था । अबसर पाते ही भभक पड़ा, “अगर तुम साफ-साफ सुनना चाहते हो, तो मुझसे सुनो । यह सब तुम्हारे ही कारण हुआ है, बाबा । तुमने उन्हें सभी प्रकार की छूट दे रखी है । वे चाहे जो कुछ करें कोई कुछ

बोल नहीं सकता। यह भी कोई बात हुई? मैं उसका बाप हूँ, पर हरि मेरे कहने में जरा भी नहीं है। सारी खुराफात की जड़ यह पैसा देना है। यह मुझे कतई पसन्द नहीं। तुम पैसा देना बन्द कर हो, तो सारी गड़बड़ी खत्म हो जाए।”

किबाड़ की आड़ में खड़ी कुछ औरतों ने आपस में आलोचना की, “ठीक ही तो है। पैसा देने के कारण तो यह सब हुआ ही है। बाबा जी पैसे देना बन्द कर दें, तो सब ठीक हो जाए।”

बाबा कुछ शर्मा कर नीचे देखते हुए बोले, “तो तुम सब यही चाहते हो, कि मैं पैसे न दूँ? तुम्हें बुरा लगता है, तो आज से पैसे देना बन्द।”

पिता जी ने चापलूसी-भरे स्वर में, झुक कर, धीरे से कहा, “देखो, पैसे देने से लड़कों की आदत खराब हो जाती है। अगर खाने की चीज घर में ही तैयार हो जाए, तो पैसे देने की जरूरत ही क्या है? वे अंड-बंड चीजें खाते हैं, और सेहत खराब हो जाती है।”

मेरी गर्मी अभी शान्त नहीं हुई थी, बोला, “यही नहीं, बच्चों को अपने साथ बिठा कर खिलाओ भी नहीं, और न किसी को उन्हें मारने से रोको। देखता हूँ, कि वे चौपट होते जा रहे हैं। ऐसी हालत रही, तो वे लिखेंगे-पढ़ेंगे तो क्या, आवारा जरूर हो जाएँगे। बताओ, आन हरि मर जाता, तो? साफ बात तो यह है कि तुम टेंट में पैसे बाँधा ही न करो।”

बाबा जैसे जबरदस्ती बोले, “हाँ, रे लल्लू, समझ गया क्या मुझे उल्लू समझ रखा है ? देखना, अब कोई साला मेरे पास फटकने नहीं पाएगा ।”

“तुम उन्हें डाँट दिया करो, और जरूरत पड़ने पर मार भी दिया करो, कक्का । कम्बख्त इसी तरह ठीक होंगे ।” पिता जी जैसे गद्गद् हो कर बोले ।

दादी, बाबा की तीसरी धर्मपत्नी, भी आ गयी थीं । तुनक कर बोलीं, “अब और पैसे दो ! बार-बार कहा, कि तुम्हें दूसरों से क्या मतलब ? चुपचाप बैठ कर राम-नाम भजा करो । परन्तु तुम तो पागल हो गये हो । इसी तरह किसी दिन किसी की हत्या का दोष तुम्हारे सिर पर मढ़ जायगा, और तब सभी थू-थू करेंगे । कोई बात न पूछेगा ।”

बाबा शर्म से थोड़ा मुस्करा कर चुप रह गये । आश्चर्य था, कि उन्होंने कुछ विरोध नहीं किया ।

उसके बाद सब शान्त हो गया । सब काम-काज ठीक से चलने लगा । दूसरे दिन बाबा उठे और चुपचाप अपना काम किया । नाश्ते के समय में अभी देर थी । वे खाट पर लेट गये । उन्हें नींद आने लगी । चादर से मुँह ढँक कर सो गये ।

सब लोग भीतर अपने-अपने काम में व्यस्त थे । लगभग एक घंटा बाद दादी एक हाथ में हलवे का कटोरा और दूसरे हाथ में गिलास लिये बाहर आयीं, उन्होंने कहा, “उठो, जी, कलेऊ कर लो ।”

बाबा कुछ नहीं बोले। दो-तीन दफा कहने पर भी कुछ उत्तर न मिला, तो दादी ने कटोरे और गिलास को स्टूल पर रख कर, यह कहते हुए कि, “भाड़ में जाए ऐसी नींद !” चादर हटा दी। पर बाबा को देखते ही, चीख मार रो पड़ीं, “हाय राम !” बाबा की आँखें फटी-फटी सी थीं और मुँह कुछ खुला हुआ था। वे महानिद्रा में निमग्न थे।

चीख सुनते ही, लोग दौड़ आये और छाती पीट-पीट कर रोने लगे। चारों तरफ कोहराम मच गया। मुहल्ले के लोग भी आये और समझाने-बुझाने लगे, “अरे, मिश्र जी (बाबू जी), आप रोते हैं ? आप खुशियाँ मनाइए कि इतने बूढ़े होकर कितनी शांति से मरे ! ऐमा तो सतयुग में ही होता था। उठिए, अर्थी बनवाने का इन्तजाम कीजिए।”

धीरे-धीरे रोना-पीटना बंद हुआ। अर्थी बनने लगी। बाबा को नहलाने के लिये आँगन में ले जाया गया। बनियाइन उतारी गयी। फिर धोती खोली जाने लगी। तभी झन-झन कर के बहुत-से पैसे गिर पड़े। गिनते पर वे पैसे पूरे सवा रुपये के निकले।



जीत की हार

[शैवाल सत्यार्थी]

उस दिन जब कि मैं पाठशाला से घर वापस लौट रहा था, चमेली चाची की दूकान पर कुछ शोर सुनकर ठिठक गया। दूकान तो क्या थी, कबाड़खाना जैसा कुछ था। परन्तु हाँ, जरूरत की लगभग हर चीज़-अच्छी नहीं तो बुरी हालत में लेकिन सस्ते दामों पर, मिल जरूर जाती थी। फिर यह बात भी थी कि मोहल्ले के ठोक सिरे पर होने के कारण, चाची का रिश्ता भी तो निभाना पड़ता था।

बात दरअसल में यह है कि तम्बाकू, और वह भी खास मैनपुरी खाने का मैं पुराना आदी हूँ। स्कूल जाते समय एक और वहाँ से लौटते समय दूसरी, इस तरह दिन में दो पुड़ियाँ चाची की दूकान से लेना, मेरे लिए रोज़मर्रा की जरूरत में शुमार हो गया था। उधर, चमेली चाची भी इस मामले में चाची तो क्या, पूरी मेरी नानी थीं, नानी ! फर्क यदि कुछ था तो बस इतना ही कि मैं खाता था और वे पीती थीं, चिलम में। ऐसे मुझसे लगभग मिलते-जुलते लोगों को, देखने-सुनने वाले एक ही थैली का चट्टा-बट्टा समझते थे—एक ही जाति-बिरादरी का। यह बात दूसरी थी कि कोई चवन्नी, तो कोई अठन्नी और कोई रुपया था !

मेरी यह आदत अच्छी है या बुरी—यह सवाल ही जरा टेढ़ा है। यद्यपि यह निश्चित है कि किसी भी बात का आदी होना उतना ही बुरा है, जितना कि किसी अच्छी बात से दूर रहना ! फिर अच्छे-बुरे की पहचान का जहाँ तक सवाल है, वह तो अपने-अपने ख्याल की अपनी-अपनी तराजू पर तौली जाती है। जो कुछ भी हो, न खाने वाले तो मेरी इस आदत को बुरा ही कहते थे और यदि मुँह पर एक बार न भी कहें तो, पीठ पीछे तो जरूर ही कहते थे। किन्तु बावजूद इसके, मेरी पीठ थपथपाने वालों तथा शाबासी पर शाबासी, बिना मोल भाव के देने वालों की संख्या भी कुछ कम न थी। वे सब के सब यह कहकर कि “यदि भगवान् भोलानाथ-बंभोला, भौंग का लड्डू बराबर गोला चढ़ा सकते हैं तो इस चूरण सी चुटकीभर--वेचारी की हस्ती ही क्या है, शंकर की उस प्रलयकारी मस्ती के आगे ?” मुझे अपने कार्य की सचाई की ऊँचाई के आकाश पर चढ़ा देते थे। तब मैं उस घमंडी मेंढक की तरह फूलकर कुम्पा हो जाता था जो शान में अपना पेट फुलाता गया, फुलाता ही चला गया और फिर, गुब्बारे की तरह एकदम फट पड़ा !

खैर जो कुछ भी हो, अपनी औकात का—चादर की लम्बाई का ख्याल तो रखना ही चाहिये ! यहाँ पर, एक बात और भी साफ कर देना चाहता हूँ कि मेरी इस आदत की तारीफ की ‘चीन की सबसे ऊँची दीवार’ उठाने वाले ये सब ‘भोले-भाले’ मैनपुरी की जादुई पत्तियों के प्रबल समर्थक और पुजारी थे !

हाँ तो, उस दिन शाम को भी दूर से ही चाची को दूकान पर बैठा हुआ देखकर, इच्छा होते हुए भी रुकना तो

नहीं चाहता था; कारण जैसे ही हाथ जेब में डाला वैसे ही लगा कि वह पाताल में पहुँच गया ! देखा तो जेब ही फटी थी और तब मैंने फटी-फटी आँखों से मेनपुरी की उन जादुई पुड़ियों पर अपनी नजर दौड़ाई—जैसे कोई बच्चा मिठाई की दूकान के सामने पहुँचकर, उसे न खरीद सकने की लाचारी पर निराश हो जाता है। आदत ने यद्यपि जोर मारा, पर मजबूरी ने तुरन्त लपककर उसे दबोच लिया। तलब को ही पीने को कोशिश करता, कुछ अड़चन के साथ गले के नोचे उतारता हुआ, मैं आगे बढ़ जाना चाहता था...

और तभी, मैंने चाची को दूकान पर के उस शोर को सुना। लपककर उधर गया तो देखता क्या हूँ कि इन्दु, राका और राजीव—ये मेरे मोहल्ले के ही एक लड़का तथा दो लड़कियाँ थीं; जरा-जरा से किन्तु बड़े ही तेज तूफान को मात देने वाले—एक साथ उस बेचारी बुढ़िया को घेर-घार कर, उसकी नाक में दम किए दे रहे थे। साथ में, आस-पास और भी क्लास के छोटे-बड़े बच्चे थे और ऐसा मालूम दे रहा था कि अपना फौज-फौंग लेकर कुछ शक्तिशाली राजा किसी निर्बल राज्य पर चढ़ दौड़े हैं।

बुढ़िया को भी अग्नी दयनीय स्थिति का आभास हो चुका था। उसने अपने चारों ओर देखा, किन्तु सीमावर्ती पड़ोसी देशों से सहायता की कोई आशा न देख कर वह आत्मसमर्पण के लिये लगभग तैयार थी। किन्तु वहाँ उसकी भत्ता सुनता कौन था नक्कारखाने में तूती की आवाज !

मुझसे यह अन्याय सहन नहीं हुआ। मैं उनके ठीक

बीचोबीच आ खड़ा हुआ—“यह क्या बदतमीजी कर रहे हो, तुम सब के सब?” मैंने डपट कर राजीव से पूछा, क्योंकि सिपहसालार बना तो वही खड़ा था, यद्यपि आगज के उस दायरे में शामिल सब थे !

बार खाली नहीं गया। मैंने देखा—सिपहसालार साहब के पैर मैदान से उखड़ने लगे और एकदम वे सब के सब भाग खड़े होने की स्थिति में आ गए। किन्तु तभी, इन्दु ने करीब-करीब उखड़ते हुए मोर्चे को सम्हाला—

“देखिए साहब, बात यह है कि इस बुढ़िया ने हमारे पैसे पहले ही ले लिए हैं और अब सौदा देने में गड़बड़ कर रही है। बस, इतनी-सी तो बात ही है—कोई नदी-पहाड़ थोड़े ही।” ठीक कैची की तरह चलती हुई जुबान से इन्दु ने अपनी सफाई पेश की।

सिपाही, सिपहसालार से भी ज्यादा तेज है—मन ही मन मैंने सोचा।

अब राजीव की ओर घूमा मैं, लेकिन वह तो ऐसा फिसड़ी निकला कि कबड्डी की पहली पारी में ही चला गया ! उसके धीरज का बाँध चरचरा उठा, पानी बह निकला—“हाँ...बात...यही तो बात...आँ...आँ...!” और फफक-फफककर वह रो दिया जैसे बाँध फट पड़ने के कारण पुल पर बाढ़ आ गई हो।

मेरी सुप्त सहानुभूति ने अँगड़ाई ली, पलटा खाया, और रास्ते से ही अपना रुख बदल दिया—

“आखिर फिर बात क्या है, चाची ? ठीक-ठीक क्यों नहीं बतातीं ?” मैंने गुस्से के पीते—दबाते हुए तेज आवाज में कहा ।

बुढ़िया का जिन्दगी के लम्बे मफर में थका हुआ दिल, भिड़की की दहशत से बैठ-सा गया । सहमी-मी आवाज में उसने कहा—

“ठीक ही बात कहूँगी बेटा ! अब किनारे पर नाव थोड़े ही डुबोनी है । बहुत गई, थोड़ी रही—हरे राम, शिवशंकर ! बात यह है…” कहकर उसने अपनी भिची हुई मुट्ठी में से एक दुअन्नी निकालते हुए आगे कहा, “इनकी यह दुअन्नी ही घिसी हुई है । अब तुम्हीं बताओ भला इसमें मेरा क्या कुसूर है ?”

“ओह, तो यह बात है !” मेरे मुँह से निकला—मुकदमे की उभलन जैसे सुलभकर एकदम जज के सामने आ गई हो । मोहल्ले के इन छटे हुए, सनद-धारी उधमियों की सारी शारत, पलक झपकते ही बखूबी मेरी समझ में आ गई थी । मैंने आहिस्ते से, चाची की दृकान पर रखी हुई नीम की हरी छड़ी को उठाया और पीछे मुड़ा—

“...भर !...भर !!...भर...!!!

“अरे !” मैंने देखा सिपहसालार साहब, मय अपने बहादुर सिपाही के, नौ-दो-ग्यारह होकर मोहल्ले के दूसरे सिरे के मोड़ पर पहुंच चुके थे । नदी की बाढ़ अपने पानी को

ही नहीं, आस-पास के नाली-नालों को भी अपने साथ बहा ले गई थी !

“खैर कोई बात नहीं, वे अब हमारी हृद के बाहर खड़े जा चुके हैं ।” किन्तु इतना कहकर जैसे ही मैं चुप हुआ, मैंने आश्चर्य से देखा कि एक छोटा सिपाही, शायद सबसे ही छोटा, अभी भी मैदान में खड़ा था, अड़ा था ।

वह आगे बढ़ा, मेरी हँसी निकल गई—“क्यों राका, क्या बात है भला ?” मैंने प्यार से पूछा ।

“बुलिया तो भूत बोलती है...आँ...आँ...” रोते हुए सिपाही ने हिंसा छोड़कर, अहिंसा का रास्ता पकड़ा । पर क्या उस अहिंसा में सत्य का सम्मिश्रण भी था ?

मैंने नहीं राका को अपनी गोद में उठाकर, ढाढ़स बँधाया तो वह और भी जोर से रो पड़ी । अरे, अहिंसा में धैर्य और शौर्य को भी आवश्यकता होती है—मैंने सोचा ।

“...आँ...आँ, इछने हमाली बलिया दुअन्नी अपनी थैली में दात लो औल यह खलाव हमें वापिछ दे लही है...आँ...आँ...आँ !” बच्चे अपनी तुतली जुबान से जो फैसला दे देते हैं, वह सुप्रीम कोर्ट का फैसला होता है जिसके आगे कोई नहीं जाता और यदि जाता भी है तो उसकी कोई सुनवाई नहीं होती !

मैं तब घूमा, बुढ़िया को देखा—उसके मुँह की थकी भुर्रियाँ, जिन्दगी में एक बार फिर मुसकराने की कोशिश कर रही थीं । उसमें जिन्दगी की आन और जीत की मुस्कान

ज़रूर चल-फिर रही थी; किन्तु एक वेबसी भी थी—बुढ़ापे की शान का सवाल जो था, जहाँ हार की हमेशा जीत है ।

भुर्रियों-भरा हाथ थैली के भीतर गया, बाहर आया और मेरी ओर बढ़ा—एक चमत्कामाती हुई दुअत्री काँपती-सी उस पर रखी थी, और जो उस हार का डंका पीट रही थी जो जीतकर भी हार गई थी !

